चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

सरकार क़ातिल को ही मुंसिफ़ बना देती है

पेज 3

आज़ाद कौन है?

पेज 6

अमेरिकी युद्ध अब पाकिस्तान में?

पेज 11

साई की महिमा

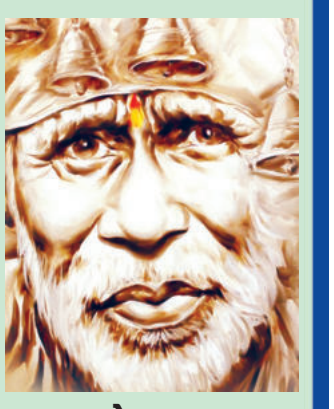

पेज 12

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 19 जुलाई–25 जुलाई 2010

सेना के शीर्ष अधिकारी सामने आए

फ़ौज का इस्तेमाल न हो

नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारे जाने के विरोध में सेना की तरफ़ से उठाए गए क़ानूनी सवालों के बाद केंद्र सरकार का अति उत्साह ठंडा पड़ गया है. इसके बाद ही केंद्र सरकार को यह ऐलान करना पड़ा कि एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना को सीधे तौर पर नहीं उतारा जाएगा. पहले केंद्रीय गृहमंत्री पी चिदंबरम एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना को मैदान में उतारने पर आमादा दिख रहे थे, लेकिन अब शांत हो गए हैं. *चौथी दुनिया* ने सेना के उन सवालों को प्रकाशित किया, जिन सवालों ने केंद्र सरकार को ज़मीनी असलियत का एहसास कराया. नक्सल प्रभावित राज्यों में विस्तृत सेना के मध्य कमान क्षेत्र पर ही इसका दारोमदार आना था, लिहाज़ा रक्षा मंत्री एके एंटोनी सेनाध्यक्ष जनरल वीके सिंह के साथ पिछले दिनों मध्य कमान मुख्यालय लखनऊ गए थे, वहां मध्य कमान के शीर्ष कमांडरों ने उनके समक्ष सवाल रखे. मध्य कमान के जीओसी इन सी लेफ्टिनेंट जनरल विजय कुमार अहलूवालिया की ओर से इसके पहले नक्सली मसले पर एक विस्तृत रिपोर्ट रक्षा मंत्रालय के समक्ष पेश भी की जा चुकी थी.

प्रभात रंजन दीन

पहले सेना ने और अब सेवानिवृत्त हो चुके वरिष्ठ सेना अधिकारियों ने सरकार की प्रस्तावित सेना तैनाती नीति को लेकर अपना विरोध प्रगट किया है. जो बात सरकार को समझनी चाहिए, उसे भारत की सेना सरकार को समझाने की कोशिश कर रही है कि विकास के काम में युद्ध स्तर की तेज़ी लाए और भ्रष्टाचार के दोषी सिविल पुलिस व प्रशासन के अधिकारियों–कर्मचारियों को मध्यकालिक सख्ती वाली सज़ा दिए बिना, हालात सुधारे नहीं जा सकते. सेना की यह चेतावनी भारत की सरकार को ही नहीं है, बल्कि विरोधी दलों को भी है. दरअसल यह चेतावनी भारत के राजनैतिक तंत्र को है, जो अलोकतांत्रिक हो गया है. बधाई की पात्र भारत की सेना है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास करती है और वैसी ही सलाह देती है. भारत की न्याय व्यवस्था के लिए भी सेना का रुख़ सीख देने वाला है.

अपने ही देश के लोगों पर गोली नहीं चलाने के सेना के रुख़ के समर्थन में कई वरिष्ठ सेना अधिकारी खुलकर सामने आ गए हैं. वायुसेना ने तो आधिकारिक तौर पर घोषणा ही कर दी कि उसके हेलीकॉप्टर एंटी नक्सल ऑपरेशन के लिए नहीं दिए जाएंगे. इसके लिए केंद्र सरकार अलग से हेलीकॉप्टर ख़रीदे. भारतीय सेना के लेफ्टिनेंट जनरल और मेजर जनरल जैसे शीर्ष पदों पर आसीन रहे वरिष्ठ अफसरों समेत कई अन्य आला सेना अधिकारियों ने चौथी दुनिया के मंच पर आकर नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना के इस्तेमाल की गंभीर क़ानूनी पेचीदगियों पर विस्तार से और बेबाकी से अपनी राय दी है.

भारतीय सेना की उत्तरी कमान जैसे संवेदनशील सैन्य महकमे के जनरल अफसर कमांडिंग इन चीफ (जीओसी इन सी) रहे **लेफ्टिनेंट जनरल मोहिंदर एम वालिया** 1962 के चीन युद्ध के साथ-साथ 1965 और 1971 का भारत-पाकिस्तान युद्ध लड़ चुके हैं. इसके अलावा कई अन्य महत्वपूर्ण ऑपरेशनों में वह सक्रिय रूप से और बतौर रणनीतिकार हिस्सा ले चुके हैं. उन्हें कई युद्ध पदकों और विशिष्ट सेना मेडलों से नवाजा जा चुका है. युद्ध लड़ने से लेकर युद्ध की रणनीति बनाने तक में जनरल वालिया विशेषज्ञ माने जाते रहे हैं. जनरल वालिया साफ-साफ कहते हैं कि नक्सली संगठनों के ख़िलाफ़ सेना को उतारना बिल्कुल ग़लत है. क़ानून व्यवस्था बहाल रखना और अंदरूनी सुरक्षा बंदोबस्त सिविल प्रशासन का काम है, न कि सेना का. देश में अपनी ज़िम्मेदारी दूसरे के सिर पर मढ़ने का जैसे चलन हो गया है. राजनीति ने भारतवर्ष के संगीत को तहस-नहस करके रख दिया है. सिविल पुलिस और प्रशासन का मूल दायित्व सेना के मत्थे मढ़ने का सबसे बड़ा नुक़सान सेना की दक्षता को पहुंचेगा. सेना देश को बाहरी ख़तरों से बचाने के लिए होती है, न कि अंदरूनी मामलों में उलझ कर अपनी स्थिति पुलिस जैसी बना लेने के लिए. ऐसे ग़ैर ज़रूरी कामों में फंसने से सेना अपनी पेशेगत ट्रेनिंग की अनिवार्यता से वंचित रह जाएगी और देश को बाहरी ख़तरों से बचाने का प्राथमिक कर्तव्य उपेक्षित रह जाएगा. इससे पैदा होने वाले संकट से देश को उबारने की क्षमता क्या देश के नेताओं में है? सोचने-समझने की इतनी ही क्षमता राजनेताओं में होती तो क्या आज सेना इतने तनावपूर्ण हालात से गुज़रती?

जनरल वालिया देश के राजनीतिकों के प्रति हिकारत जताते हुए कहते हैं कि एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना को उतारने या क़ानून व्यवस्था जैसे मसलों में सेना को उलझाने जैसी हरकतें सेना के मनोबल पर भीषण नकारात्मक असर डालेंगी. देश के आम नागरिकों के मन में सेना के प्रति सम्मान घटेगा, क्योंकि सेना देश के लोगों से लड़ने के लिए नहीं होती. किसी भी सेना का सबसे बड़ा गौरव उसके प्रति देश के लोगों का सम्मान भाव होता है. अगर अपने ही देश में सेना का सम्मान नहीं बचा रहेगा तो फिर देश का क्या होगा? जिस देश में राजनीतिकों की वजह से सिविल पुलिस और अर्धसैनिक बलों की साख बुरी तरह धराशाई हो चुकी हो, वहां सेना की भी साख गिराने की राजनीतिक कोशिशें देश प्रेम नहीं, देशद्रोह है. इसका देश के लोगों को विरोध करना चाहिए. जनरल वालिया नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारे जाने के केंद्र सरकार के रवैये पर शीर्ष सैन्य कमांडरों की असहमति पर हार्दिक ख़ुशी जताते हैं और उनके प्रति आभार जताते हुए कहते हैं कि भारतीय सैन्य नेतृत्व ने ऐसा करके यह साबित कर दिया है कि भारतीय सेना सच्चे मन से लोकतांत्रिक है, नेताओं जैसा छद्म भारतीय सेना में नहीं है. सेना की असहमति और सेना द्वारा उठाए गए सवालों को प्रकाशित कर उसे पूरे देश के समक्ष उजागर करने के लिए जनरल वालिया चौथी दुनिया के प्रति भी अपना हार्दिक आभार जताते हैं.

मेजर जनरल नीलेंद्र कुमार को आर्टिलरी (तोपखाना) में 1969 में कमीशन मिला और उन्होंने 1971 का युद्ध भी लड़ा. क़ानून में विशेषज्ञता हासिल करने वाले नीलेंद्र कुमार 1982 में जज एडवोकेट जनरल ब्रांच में आए और क्रमशः भारतीय सेना के जज एडवोकेट जनरल भी बन गए. कई अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया. सैन्य क़ानूनों पर

(शेष पृष्ठ 2 पर)

ले. जनरल एमएम वालिया

मेजर जनरल नीलेंद्र कुमार

ले. कर्नल अजित सिंह

कमांडर केके चौधरी

राजनीति में सेना को सिर नहीं डालना चाहिए

सेना ने रक्षा मंत्रालय के समक्ष जो वैधानिक सवाल उठाए, उन सवालों पर भारतीय नौसेना के कमांडर केके चौधरी ने विस्तार से अपनी राय जाहिर की. कमांडर चौधरी को सेना की संवेदनशील रणनीतियों और साइबर वारफेयर का माहिर अधिकारी माना जाता है. इसी वजह से केंद्रीय ख़ुफ़िया एजेंसी रॉ की तकनीकी शाखा नेशनल टेक्निकल रिसर्च ऑर्गेनाइज़ेशन (एनटीआरओ) में भी उनकी सेवाएं ली गईं और नौसेना से अवकाश लेने के बावजूद सेना की विभिन्न इकाइयों में साइबर वारफेयर के बारे में विशेष शिक्षण-प्रशिक्षण देने के लिए उन्हें बुलाया जाता है.

सेना का सवाल : केंद्र सरकार किस क़ानूनी या संवैधानिक आधार पर नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारेगी? आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू किए बग़ैर क्या यह संभव है? जम्मू कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में लागू इस एक्ट को वापस लिए जाने की निहायत सस्ती राजनीतिक मांगों के क्या कोई तार्किक आधार हैं?

दागी अधिकारियों के ख़िलाफ़ जल्द से जल्द जांच प्रक्रिया पूरी की जा सके, ताकि जनता के पैसों से चलने वाली जांच प्रक्रिया ज़्यादा लंबी न खिंचे.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

दागी बाबुओं की ख़ैर नहीं

यूपीएससी के पूर्व चेयरमैन पी सी होटा के नेतृत्व में एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति ऐसे प्रस्तावों पर विचार कर रही है, जिनसे दागी अधिकारियों के ख़िलाफ़ जल्द से जल्द जांच प्रक्रिया पूरी की जा सके, ताकि जनता के पैसों से चलने वाली जांच प्रक्रिया ज़्यादा लंबी न खिंचे. यह किसी से छिपा नहीं है कि अधिकारी जानबूझ कर जांच प्रक्रिया को लंबा खींचते हैं. इसके लिए वे हर तरह के बहाने बनाते हैं. अधिक समय की मांग कर या अपने स्वास्थ्य संबंधी बहानों के जरिए. नए प्रस्ताव के मुताबिक़, जांच अधिकारी विशेष हालात में सुनवाई को स्थगित करने की अनुमति देंगे और पूरी जांच प्रक्रिया में सिर्फ़ तीन बार ही ऐसा किया जा सकेगा. हालांकि यह समिति इस बात पर भी विचार कर रही है कि जो बाबू अनुशासनात्मक या विजिलेंस कार्रवाई का सामना कर रहे हैं, वे अगर अपना दोष मान लेते हैं तो उन्हें शीघ्र ही थोड़ी–बहुत सजा देकर मामले को ख़त्म कर दिया जाए. बजाय इसके कि यह पूरी प्रक्रिया काफी लंबी खिंचे. सूत्रों के अनुसार होटा समिति बाबुओं को कुछ वित्तीय लाभ देकर भी ऐसे मामलों की जल्द जांच कराने के प्रस्ताव पर विचार कर रही है. साथ ही इसे बाबुओं की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में भी शामिल करने पर विचार कर रही है. लेकिन सवाल यह है कि क्या इस प्रस्ताव को बाबुओं की स्वीकृति मिल पाएगी?

क्या योग्य चेयरमैन मिलेगा?

केंद्रीय मंत्री कमलनाथ कहते हैं कि योजना आयोग उन्हें फंसा रहा है, लेकिन असल में उनकी समस्या उनके अपने मंत्रालय से है. भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) के नए प्रमुख की तलाश से शर्मनाक नतीजा निकला है. दरअसल एनएचएआई के नए प्रमुख की तलाश में जुटी कमेटी के ही एक सदस्य ने इस पद के लिए आवेदन कर दिया था. अब सरकार ने चेयरमैन पद के लिए योग्यता के मापदंड को फिर से तय कर दिया है और चयन की पूरी प्रक्रिया भी बदल दी है. सूत्रों के मुताबिक, एनएचएआई के पूर्व सदस्य के एस मनी (जो अब राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के महासचिव हैं), रेलवे बोर्ड के चेयरमैन एस एस खुराना, विदेशी व्यापार के महानिदेशक (डीजीएफटी) आर एस गुजराल, रेलवे बोर्ड (अभियांत्रिकी) के सदस्य राकेश चोपड़ा, एनएचएआई के वर्तमान चेयरमैन बृजेश्वर सिंह एवं पथ विभाग के सचिव ब्रह्मदत्त समेत ढेरों बाबू अपना जुगाड़ फिट करने में जुट गए हैं. हालांकि सरकार ने सबसे योग्य चेयरमैन को चुनने के लिए अपने नियमों में कुछ और शर्तों को जोड़ा है. उनके अनुसार आवेदक को वित्तीय प्रबंधन में 15 साल का अनुभव होना चाहिए और वह सचिव अथवा इसके समानांतर पद पर हो या उसके लिए बनाई गई सूची में शामिल हो. साथ ही उम्मीदवार प्रबंधन, प्रशासन, क़ानून, वित्तीय और पथ अभियांत्रिकी में से किसी एक क्षेत्र से जुड़ा रहा हो. तो यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अब चयन प्रक्रिया विवाद रहित और जल्दी से संपन्न हो जाएगी.

dilipcherian@gmail.com

साउथ ब्लॉक

रणबीर जा सकते हैं अमेरिका

1991 बैच के आईएएस अधिकारी डॉ. रणबीर सिंह को वाशिंगटन स्थित भारतीय दूतावास में राजीव रंजन की जगह कम्युनिटी अफेयर्स डेवलपमेंट विभाग का काउंसलर बनाया जा सकता है. राजीव 1989 बैच के आईएएस अधिकारी हैं और उनका कार्यकाल अभी–अभी खत्म हुआ है. डॉ. रणबीर फिलहाल ओवरसीज इंडियन अफेयर्स मंत्रालय में निदेशक ह

ज्ञानेश्वर को अतिरिक्त भार

हिमाचल प्रदेश कैडर के 1999 बैच के आईपीएस अधिकारी ज्ञानेश्वर सिंह को ब्यूरो ऑफ सिविल एविएशन सिक्यूरिटी में उपायुक्त पद की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी सौंपी गई है. फ़िलहाल वह एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया में महाप्रबंधक–सुरक्षा पद की ज़िम्मेदारी संभाल रहे हैं.

वेंकट रमण की जगह भानु

बिहार कैडर के 1981 बैच के आईएएस अधिकारी भानु प्रताप शर्मा को कैबिनेट सचिवालय में संयुक्त सचिव नियुक्त किया गया है. शर्मा आंध्र कैडर के आईएएस अधिकारी सी बी वेंकट रमण की जगह गए हैं. इससे पहले शर्मा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय में संयुक्त सचिव के पद पर थे. दूसरी ओर वेंकट रमण का तबादला परमाणु ऊर्जा विभाग, मुंबई में कर दिया गया है.

कौन जाएगा टोक्यो?

टोक्यो स्थित भारतीय दूतावास में मिनिस्टर (आर्थिक) का पद 30 अगस्त तक खाली होने वाला है. यह पद संयुक्त सचिव स्तर का होता है. 1979 बैच के आईएएस अधिकारी आर रामानुजम फ़िलहाल इस पद पर हैं. सूत्रों के मुताबिक़, इस पद के लिए तीन आईएएस अधिकारियों के नामों पर चर्चा जारी है. इनके नाम हैं, 1985 बैच के अरुण गोयल, 1983 बैच के इंजेती श्रीनिवास और 1984 बैच के अरविंद मेहता.

फ़ौज का इस्तेमाल न हो

पृष्ठ 1 का शेष

कमांडर चौधरी : देश के राजनीतिक नेतृत्व को क़ानून व्यवस्था के मसले में वोट की राजनीति घुसेड़ने से परहेज करना चाहिए. जिस क़ानून व्यवस्था के मसले में सेना उतारे जाने का प्रयास हो रहा है, वह नेताओं द्वारा आदिवासियों और ग़रीबों के शोषण के कारण ही पैदा हुआ है. नेताओं ने शोषण और भ्रष्टाचार में प्रशासन को भी अपना हथियार बनाया. इसीलिए आज पुलिस गिरे हुए नैतिक मनोबल का समूह बनकर रह गई है. अपराधियों को नेताओं का संरक्षण मिला हुआ है और पुलिस की हैसियत नेताओं के नौकरों और दलालों जैसी रह गई है. यदि केंद्र सरकार यह मानती है कि क़ानून व्यवस्था से जुड़े नक्सली मसले को नियंत्रित करने में सिविल पुलिस और प्रशासन फेल है तो उसे आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू करने के बाद ही सेना का इस्तेमाल करना होगा. जहां राजनीति हो वहां सेना को अपना सिर कतई नहीं डालना चाहिए.

सेना का सवाल : सेना का प्राथमिक दायित्व सीमा की सुरक्षा करना है. भारतीय सेना पाकिस्तान पोषित आतंकवाद से लड़ने में लगातार व्यस्त है. ऐसे में एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना उतारने का फैसला क्या अनुचित नहीं?

कमांडर चौधरी : भारतीय सेना अपने सीमित संसाधनों के बावजूद कोई भी चुनौती स्वीकार करने और उसे अंजाम तक पहुंचाने में सक्षम है, लेकिन देश के अंदरूनी लॉ एंड ऑर्डर मामले में सेना का इस्तेमाल तभी हो, जब सारे विकल्प समाप्त हो जाएं और केंद्र इसे स्वीकार कर ले. सरकार के पास विकल्प तो हैं, पर राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है. केंद्र व राज्यों के सत्ताधारी नेता एक-दूसरे पर दोषारोपण और असामान्य स्थितियों में भी राजनीति घुसेड़ने से बाज आएं, तभी विकल्प के बारे में सोचा जा सकता है!

सेना का सवाल : सरकार हर मामले में सेना का इस्तेमाल तो करने लगती है, लेकिन कानूनी पचड़े में फंसने के लिए उसे अकेला छोड़ देती है. सेना को सिविल कानून भी झेलना पड़ता है और सेना का कानून भी. इससे बचाव के लिए सरकार सेना को क्या गारंटी देगी?

कमांडर चौधरी : इसकी तो कोई गारंटी नहीं. राजनीति करने वाले और ह्यूमन राइट्स की दुकान चलाने वाले लोग किसी भी घटना को तूल देकर सेना का मनोबल ध्वस्त करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते. मीडिया गैर जिम्मेदाराना तरीके से बिना सोचे समझे इन मामलों को जरूरत से ज्यादा हाईलाइट करता है, यह नहीं सोचता कि ऐसा करने से देश का क्या नुकसान हो रहा है. सेना तभी मनोबल से काम कर सकती है, जब उसे सरकार, राजनीतिक दलों, मानवाधिकार संगठनों, मीडिया एवं आम नागरिकों का विश्वास मिले, लेकिन इसका घोर अभाव है. देखिए कश्मीर में क्या हो रहा है? ऐसे में सेना नक्सली ऑपरेशन में उतरने से असहमति तो जताएगी ही.

सेना का सवाल : सिविल पुलिस के फेल हो जाने पर सरकार ने किसे दोषी ठहराया और किसे क्या सज़ा मिली? सिविल प्रशासन के नाकारेपन की गहरी खाई ढंकने के लिए सेना का बेजा इस्तेमाल क्यों किया जाता है?

कमांडर चौधरी : अब यह कहने की जरूरत नहीं. देश भर के लोग यह जानते-समझते हैं कि आजादी के बाद से आज तक लगातार विभिन्न सरकारों, नेताओं और सिविल प्रशासन तंत्र ने मिलकर गरीब आदिवासियों का जबरदस्त शोषण किया है. भयंकर भ्रष्टाचार सारी समस्या की जड़ में है. इसे जड़ से उखाड़ना मुश्किल हो रहा है. नेता डाल काटने में लगे हैं. नक्सल या आम भाषा में कहें तो विद्रोह का पेड़ बरगद होता चला जाएगा. आदिवासियों और आम लोगों का भी समर्थन नक्सली संगठनों को मिलने लगेगा, क्योंकि आम लोगों का नेताओं, स्थानीय पुलिस व प्रशासन से भरोसा पूरी तरह उठ चुका है. भरोसे के इस अभूतपूर्व संकट के बावजूद सेना के प्रति लोगों का विश्वास बना हुआ है. इसे बहाल रखने के प्रति केंद्र को सतर्क रहना चाहिए.

सेना का सवाल : यदि एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना उतारी जाती है तो इसकी क्या गारंटी है कि ऑपरेशन के बीच में ही केंद्र सरकार घटिया राजनीति घुसेड़ कर नक्सली कमांडरों से वार्ता न शुरू कर दे?

कमांडर चौधरी : सरकार ऑपरेशन के बीच में घटिया राजनीति घुसेड़ेगी ही. ऑपरेशन के बीच वार्ता का सिलसिला शुरू होगा ही... इसकी तो मैं अभी ही गारंटी दे रहा हूं. ह्यूमन राइट्स और मीडिया वाले फोर्स के खिलाफ एक सूत्री एसाइनमेंट पर लग जाएंगे... इसकी भी मैं अभी ही गारंटी दे सकता हूं.

सेना का सवाल : कौन नक्सली है और कौन आम आदमी, इसकी पहचान कौन करेगा? तब, जबकि स्थानीय खुफिया ढांचा, पुलिस और प्रशासन पूरी तरह ध्वस्त हो चुका हो?

कमांडर चौधरी : ध्वस्त नहीं हुआ, यह काम नहीं कर रहा. स्थानीय पुलिस और प्रशासन ने काम छोड़ दिया है. पहले भ्रष्टाचार फिर भय. खुफिया सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं हो रहा. अर्धसैनिक बल के अफसर और जवान मर रहे हैं, लेकिन बड़े नक्सली ऑपरेशन में सिविल पुलिस या प्रशासन का कोई अफसर या सिपाही नहीं मर रहा. लोग भयवश सूचनाएं नहीं दे रहे. ऐसे में सेना उतारने का मतलब होगा नक्सलियों के साथ निर्दोष लोगों की मौत को भी बुलावा देना. सरकार और देश को इसके लिए तैयार रहना होगा.

पृष्ठ 1 का शेष

उनकी कई किताबें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुई हैं. नक्सली संगठनों के ख़िलाफ़ सेना को उतारे जाने के मसले पर उनकी राय क़ानूनी दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है. मेजर जनरल नीलेंद्र कुमार कहते हैं कि भारतीय संविधान की रचना करने वाले विद्वान राजनेताओं ने लोकतांत्रिक ढांचे को डिज़ाइन करते समय ही आने वाले समय में उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं और विपरीत स्थितियों के बारे में कल्पना कर ली थी. राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं जातीय विद्वेष से भविष्य में भड़कने वाली हिंसा और कई अन्य भावी ख़तरों को भांपते हुए ही गृहयुद्ध, बाहरी आक्रमण या देश के वित्तीय ढांचे के ध्वस्त होने की स्थिति में आपातकाल लागू करने का संविधान में प्रावधान किया गया था. विशाल भारतवर्ष में विभिन्न सिद्धांत, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक असमानताएं, रीति–रिवाज, भाषाएं और अनेकानेक आदिवासी जनजातियां समाहित हैं. देश के लोगों ने चुनावी अनियमितताओं, न्यायिक विलंब और शासनिक उपेक्षाओं को इतना भोगा है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया, परामर्श और समाधान का रास्ता ही रुक गया. इन्हीं वजहों से आम आदमी क़ानून को अपने हाथ में लेने को उद्धत हुआ, हिंसा बढ़ी, सामाजिक सौहार्द घटा और लोकतांत्रिक प्रक्रिया बाधित हो गई.

हमारे देश का क़ानूनी और संवैधानिक ढांचा क़ानून व्यवस्था के पालन का दायित्व राज्य सरकारों को देता है और इसीलिए पुलिस व क्षेत्रीय सशस्त्र पुलिस, मसलन यूपी की पीएसी या बिहार की बीएमपी की व्यवस्था की गई. लेकिन असामाजिक तत्वों के आतंकवादी संगठनों या राष्ट्र विरोधी शक्तियों में तब्दील कर जाने और राज्य प्रशासन के नाकाम हो जाने पर क्या होगा? यह और घातक हो जाएगा, जब देश के आतंकी संगठनों को सीमा पार से मदद मिलने लगे. तो ऐसे में क्या केंद्र सरकार चुप बैठी रहेगी? नहीं. ऐसी स्थिति में देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित रखने व नागरिकों की हिफ़ाज़त के लिए संविधान में बाकायदा प्रावधान है. तब संविधान इस बात की इजाज़त देता है कि केंद्र सरकार या संबद्ध राज्य का राज्यपाल राज्य के प्रशासनिक तंत्र को क़ानून व्यवस्था की बहाली में मदद के लिए सेना का सहयोग ले. लेकिन हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि संविधान के प्रावधानों के मुताबिक़ राज्य का नियंत्रण सेना अपने हाथ में नहीं ले सकती, वह केवल राज्य को सहयोग दे सकती है. इसीलिए क़ानून में आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट का प्रावधान किया गया, जो राज्यपाल या केंद्र सरकार को क़ानून व्यवस्था की बहाली में राज्य तंत्र को सहयोग करने के लिए सेना के इस्तेमाल की इजाज़त देता है. यह आप जानते ही हैं कि सेना सीधे केंद्र सरकार के नियंत्रण में रहती है, लिहाज़ा केंद्र सरकार सेना के इस्तेमाल की राज्य की सिफ़ारिश को ख़ारिज़ भी कर सकती है और उसे लंबित भी रख सकती है. सेना को किसी सिविलियन को गिरफ़्तार करने, उससे पूछताछ करने या अवैध हथियारों के जखीरे अथवा अड्डे को ध्वस्त करने का कोई क़ानूनी अधिकार नहीं है. संविधान के प्रावधानों के मुताबिक़ केवल आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट ही सेना को इस काम की इजाज़त देता है, अन्यथा नहीं. जब तक डिस्टर्ब्ड स्टेट में आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू नहीं किया जाता, सेना को वहां की क़ानून व्यवस्था की बहाली में राज्य तंत्र को सहयोग देने के लिए उतारा ही नहीं जा सकता.

जहां तक नक्सली समस्या का सवाल है, यह सर्वमान्य स्वीकृति है कि रद्दी शासन, लचर प्रशासन, भ्रष्टाचार, स्थानीय लोगों का अकूत शोषण, स्थानीय पुलिस का सम्पूर्ण नकारापन, आदिवासियों की उपेक्षा और नागरिकों की जहालत के लिए ज़िम्मेदार तंत्र के कारण ही आज स्थिति इतनी ख़राब हो गई है. केंद्र सरकार ने देश के सामने यह स्पष्ट नहीं किया कि नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारे जाने पर रक्षा मंत्रालय ने आख़िर क्यों असहमति ज़ाहिर की. पारदर्शिता के इस अभाव की वजह से सैन्य कमान की संरचना और राज्य सरकार में एक अस्पष्टता का माहौल बना रहता है. केंद्र सरकार ने सेना के तीनों अंगों को संयुक्त रूप से कमांड करने के लिए चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ के पद का प्रावधान नहीं किया. इससे सेना के तीनों अंगों के कमांड और कंट्रोल में संतुलन बनाकर रखने में भारी मुश्किल पेश आती है. संवेदनशील संयुक्त ऑपरेशनों में आदेश जारी करने की अथॉरिटी और उसके अनुपालन के बिखर जाने का ख़तरा रहता है. सेना का कोई अंग किसी दूसरे अंग के अधिकारी का आदेश किन प्रावधानों के तहत माने, यह संकट बना रहता है. इसके अलावा सेना और पुलिस के रैंक में ज़बरदस्त अंतर के कारण भी ऑपरेशन के दरम्यान कमांड एंड कंट्रोल में काफी मुश्किलें पेश आती हैं. ट्रेनिंग का अभाव और लॉजिस्टिक सपोर्ट की कमी जैसी अन्य मुश्किलें और परेशानियां तो सामने हैं ही.

किसी भी राज्य या क्षेत्र में क़ानून व्यवस्था की बहाली में सेना के इस्तेमाल का निर्णय आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू किए बग़ैर पूरी तरह ग़ैरक़ानूनी और ग़ैरवाजिब है. वैसे राष्ट्रीय राइफल्स और असम राइफल्स समेत थलसेना की सभी इकाइयां पहले से जम्मू कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में बुरी तरह उलझी हुई हैं और उन पर ज़िम्मेदारियों का बोझ लदा हुआ है. नक्सली ऑपरेशन में सेना के इस्तेमाल का मतलब है आतंकवाद और अल–गाववाद पर नियंत्रण की सेना की लगातार चल रही कोशिशों को भोथरा करना. इन्हीं वजहों से सेना के वरिष्ठ कमांडर अपने ही देश के लोगों के ख़िलाफ़ सेना उतारने पर असहमत हैं. इसके अलावा मानवाधिकार हनन की शिक़ायतों का असर भी सेना के मनोबल पर पड़ता है. ऐसे आरोप नक्सली ऑपरेशन में सेना के उतारे जाने के बाद और बढ़ सकते हैं. अंदरूनी तनाव की वजह से ख़ुद को गोली मारने या सहकर्मी या अफसरों को गोली मारने जैसी घटनाएं एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना के उतारे जाने के बाद और बढ़ सकती हैं. इन सारी स्थितियों के बावजूद क्या सेना गड़बड़ी वाले क्षेत्र में मूव करने से इंकार कर सकती है? यह सवाल आज पूरे देश में तिर रहा है. सेना अपनी असहमति के तकनीकी आधार के बारे में सरकार को पहले से इत्तिला कर सकती है, पर ऑपरेशन में उतारे जाने के सरकारी आदेश को मना नहीं कर सकती. यह भी सही है कि केंद्र सरकार भी बिना आपात स्थिति घोषित किए या आर्म्ड फोर्सेज़ (स्पेशल पावर्स) एक्ट लागू किए बग़ैर सेना उतारने का अदूरदर्शी फ़ैसला नहीं ले सकती.

prabhatranjandeen@chauthiduniya.com

यही राज्य सबसे अधिक फौजी भी देते हैं!

लेफ्टिनेंट कर्नल अजित सिंह को 1978 में आर्मर्ड (टैंक) कोर में कमीशन मिला. उनकी योग्यता और प्रखरता को देखते हुए 1990 में उन्हें सैन्य खुफिया एजेंसी (मिलिट्री इंटेलिजेंस) में भेज दिया गया. मिलिट्री इंटेलिजेंस के अधिकारी रहते हुए कर्नल सिंह ने आईएसआई का खुफिया नेटवर्क तोड़ने में अभूतपूर्व कामयाबी हासिल की. उन्हें सेना के मेडल मिले. करगिल युद्ध के दरम्यान एक गोपनीय ऑपरेशन में हुए जोरदार बम विस्फोट में वह गंभीर रूप से जख्मी हो गए और उन्हें सेना की नौकरी से अवकाश लेना पड़ा. नक्सलियों के खिलाफ सेना उतारे जाने के मसले पर कर्नल सिंह कहते हैं कि हालात इतने सड़ चुके हैं कि बिना ऑपरेशन के बीमारी दूर नहीं हो सकती. लेकिन ऑपरेशन सेना के हथियार से हो, यह गैर जरूरी है. विकास के काम में युद्ध स्तर की तेजी और भ्रष्टाचार के दोषी सिविल पुलिस व प्रशासन के अधिकारियों–कर्मचारियों के खिलाफ मध्यकालिक सख्ती वाली सजा से ही यह ऑपरेशन पूरा हो सकता है, अन्यथा नहीं. सेना तात्कालिक तौर पर गड़बड़ी रोक सकती है, लेकिन अगर विकास नहीं हुआ और विकास कार्य में भ्रष्टाचार नहीं रोका गया तो नक्सली फिर पनपेंगे और ज्यादा ताकतवर तरीके से वार करेंगे.

इसमें सबसे अहम बात यह है कि देश के लोगों के खिलाफ गोली चलाने के लिए सेना को विवश होना होगा. यह ध्यान रखने की बात है कि जिन पांच राज्यों में सघनता से एंटी नक्सल ऑपरेशन चलेगा और बहुत सारी अनावश्यक मौतें होंगी, वही राज्य सबसे अधिक फौजी भी देते हैं. सेना में सिपाहियों की सबसे अधिक आमद भी इन्हीं राज्यों से होती है. तो एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना के इस्तेमाल के प्रतिउत्पाद (बाइप्रोडक्ट) के रूप में जो परिणाम हमारे सामने आएगा, उसे झेलने के लिए भी तो केंद्र सरकार को तैयार रहना होगा! नक्सल प्रभावित राज्यों में सेना द्वारा गोली चलाने और उससे होने वाली मौतों पर मानवाधिकार कार्यकर्ताओं द्वारा मचाए जाने वाले शोरशराबे की बात को कर्नल सिंह काट देते हैं. वह कहते हैं कि कश्मीर में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं या सियासतदानों की चिल्लपों मुस्लिम तुष्टिकरण की वजह से है. नक्सल प्रभावित राज्यों में मुस्लिम तुष्टिकरण का मसला नहीं है, लिहाजा वहां ह्यूमन राइट्स वायोलेशन का मुद्दा ज्यादा नहीं उठेगा, यह तय है.

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार
वर्ष 2 अंक 19
दिल्ली, 19 जुलाई –25 जुलाई 2010
संपादक
संतोष भारतीय
मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित
संपादकीय कार्यालय
के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश–201301
फोन न.
संपादकीय 0120–4783999/11–23418962
विज्ञापन + 91 9899815169
प्रसार + 91 9868013165
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.
समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

सूचना आयुक्तों की नियुक्ति के लिए ज़िम्मेदार विभाग, डीओपीटी के पास नियुक्ति के संबंध में कोई स्पष्ट नियम-कानून नहीं है.

सूचना आयुक्त

सरकार क़ातिल को ही मुंसिफ़ बना देती है

ऐसा कहा जाता है कि भारत में क़ानून बाद में बनता है, पहले उसकी काट ढूंढ ली जाती है. कुछ यही हाल सूचना का अधिकार क़ानून के साथ भी है. सरकार के पास सूचना आयुक्त की नियुक्ति के संबंध में कोई स्पष्ट नियम-क़ानून नहीं हैं. नतीजतन, सरकार अपने वफादार नौकरशाहों को सूचना आयुक्त बना देती है. अगले 2-3 महीनों में 11 सूचना आयुक्त रिटायर हो रहे हैं. अगर अभी भी इस संबंध में कोई स्पष्ट नियम नहीं बनता है तो सूचना आयुक्त जैसा ज़िम्मेदार पद राजनीतिक नियुक्ति का ज़रिया बनता रहेगा. *चौथी दुनिया* की ख़ास रिपोर्ट.

शशि शेखर

सूचना का अधिकार क़ानून (आरटीआई) स्वतंत्र भारत में बना पहला ऐसा क़ानून है, जिसे आम आदमी के जानने और जीने के अधिकार से जोड़ कर देखा गया. इसने आम आदमी को सवाल पूछने की हिम्मत दी. शासन और प्रशासन में बैठे लोगों को पहली बार लगा कि कोई उनसे भी सवाल पूछ सकता है. और यही बात इन लोगों को ठीक नहीं लगी. इसलिए इस क़ानून की भ्रूण हत्या की पूरी साजिश रची जाने लगी. कानून बनने के पहले ही साल में कुछ ब्यूरोक्रेट्स की सलाह पर सरकार ने इस क़ानून में संशोधन कर फाइल नोटिंग जैसे महत्वपूर्ण प्रावधान को ख़त्म करने की कोशिश की. हालांकि यह कोशिश भी नाकाम रही.

लेकिन एक मामले में सरकार सफल रही है. और वह है सूचना आयुक्त की नियुक्ति का मामला. सूचना आयुक्त का पद अपने जन्म से ही राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति के लिए बदनाम रहा है. सूचना आयुक्तों की नियुक्ति के लिए ज़िम्मेदार विभाग डीओपीटी के पास नियुक्ति के संबंध में कोई स्पष्ट नियम-क़ानून नहीं है. इसी का फ़ायदा उठाकर सरकार अपने विश्वस्त और वफादार ब्यूरोक्रेट्स को सूचना आयुक्त बना देती है. उक्त विश्वस्त और वफादार ब्यूरोक्रेट्स ऐसे होते हैं, जो किसी भी क़ीमत पर अपने आकाओं के हितों की अनदेखी नहीं कर सकते. हालांकि प्रधानमंत्री, नेता प्रतिपक्ष और एक कैबिनेट मंत्री की अगुवाई में एक चयन समिति है, जो सूचना आयुक्त के लिए आए नामों पर अंतिम मुहर लगाती है. सूचना क़ानून में पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और एकेडमिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक सेवा से जुड़े लोगों को भी सूचना आयुक्त बनाया जा सकता है. लेकिन डीओपीटी की मनमानी का आलम यह है कि ज़्यादातर केंद्रीय सूचना आयुक्त पूर्व नौकरशाह हैं. अगर बात राज्य सूचना आयोग की करें तो वहां भी यही आलम है. डीओपीटी के लिए सामाजिक संगठनों, नेताओं, मुख्यमंत्रियों एवं सांसदों द्वारा की गई अनुशंसा का कोई अर्थ नहीं होता है.

चौथी दुनिया के पास मुख्यमंत्री, केंद्रीय मंत्री एवं सांसदों के लिखे वे सारे अनुशंसा पत्र हैं, जो उन्होंने किसी पत्रकार, समाजसेवी को सूचना आयुक्त बनाने के लिए लिखे थे. हरियाणा के मुख्यमंत्री, सांसद नवीन जिंदल और केंद्रीय मंत्री कुमारी शैलजा एवं हरीश रावत ने हरियाणा के एक पत्रकार रवि शंकर सिंह को केंद्रीय सूचना आयुक्त बनाने के लिए प्रधानमंत्री को अनुशंसा पत्र लिखे थे, लेकिन मजे की बात यह है कि डीओपीटी (कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग) ने रवि शंकर सिंह के नाम पर विचार तक नहीं किया. इसी तरह एक युवा डॉक्टर एवं समाजसेवी कृष्ण कबीर एंथोनी को सूचना आयुक्त बनाए जाने के लिए नकुल दास राय, लालमिंग लायना, शिवानंद तिवारी, सुखदेव पासवान, राजनीति प्रसाद, गणेश प्रसाद सिंह एवं आलोक मेहता (सभी सांसद) ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखे, लेकिन इस बार भी डीओपीटी ने डॉ. कृष्ण कबीर एंथोनी के नाम पर चर्चा तक नहीं की. इसके अलावा कांग्रेसी नेता सदानंद सिंह और बार काउंसिल ऑफ इंडिया ने एक अन्य पत्रकार सुधांशु रंजन के लिए प्रधानमंत्री को पत्र लिखा, लेकिन इस नाम के साथ भी डीओपीटी ने वही किया, जो अन्य नामों के साथ हुआ था. उल्टे हर बार जब केंद्रीय सूचना आयुक्त नियुक्त किए जाने थे, डीओपीटी अपनी ओर से कुछ नाम सीधे-सीधे चयन समिति के पास भेज देता था. अंत में उन्हीं नामों में से एक या दो पर चयन समिति अपनी मुहर लगा देती थी.

2005 से जबसे आरटीआई क़ानून अस्तित्व में आया है, तबसे लेकर अब तक केंद्रीय सूचना आयोग में चार बार सूचना आयुक्तों की नियुक्ति की जा चुकी है. हर बार एक ही ढंग से काम हुआ. सूचना आयुक्त की नियुक्ति के लिए कोई विज्ञापन नहीं निकाला गया. न ही अख़बार में कोई सूचना दी गई. हां, जिन लोगों को इसके बारे में पता चला, उन्होंने ख़ुद आवेदन भेजा या फिर किसी अन्य के माध्यम से अपना नाम आगे बढ़वाया. 2005 में पहली बार जब केंद्रीय सूचना आयुक्त की नियुक्ति की जानी थी, तब 15 लोगों ने इस पद के लिए आवेदन किया था. इन नामों में एक से बढ़कर एक समाजसेवी, अकादमिक पृष्ठभूमि के लोग थे, लेकिन जब चयन समिति के पास नाम भेजे गए तो उनमें इन 15 नामों में से एक भी शामिल नहीं था. डीओपीटी ने अपनी तरफ़ से 5 नाम चयन समिति के पास भेजे थे और उन्हीं 5 नामों पर समिति सहमत हो गई. ये नाम थे, वजाहत हबीबुल्लाह, पद्मा बालासुब्रह्मण्यम, ओ पी केजरीवाल, ए एन तिवारी, एम एम अंसारी. दिलचस्प रूप से इन नामों में से अधिकतर नाम ऐसे थे, जो पूर्व नौकरशाह थे. इसी तरह अगस्त 2008 में जब केंद्रीय सूचना आयोग में सूचना आयुक्त के चार पद खाली हुए तो डीओपीटी ने अपनी तरफ़ से 6 नाम भेजे, जिनमें से चार नामों पर चयन समिति ने अपनी मुहर लगा दी. लेकिन जिन तीन लोगों (रवि शंकर सिंह, सुधांशु रंजन, डॉ. कृष्ण कबीर एंथोनी) के नामों की अनुशंसा केंद्रीय मंत्रियों, सांसदों एवं मुख्यमंत्री ने की थी, उन पर डीओपीटी ने ध्यान देना भी ज़रूरी नहीं समझा.

ज़ाहिर है, ऐसे सूचना आयुक्त (जो पूर्व में नौकरशाह रह चुके हैं) सरकार और प्रशासन में पारदर्शिता लाने की जगह अपनी पूरी वफादारी अपने नियोक्ता (सरकार) के प्रति दिखाते हैं. अभी देश भर में 22 सूचना आयुक्त (केंद्र और राज्य दोनों मिलाकर) काम कर रहे हैं. अगले 2-3 महीनों में 11 सूचना आयुक्त रिटायर हो रहे हैं. इस संबंध में अगर अभी भी डीओपीटी कोई स्पष्ट दिशानिर्देश नहीं बनाता है तो सूचना आयुक्त जैसा ज़िम्मेदार पद यूं ही राजनीतिक नियुक्ति का ज़रिया बनता रहेगा और आम आदमी को ताक़त देना देने वाला यह क़ानून दिनोंदिन कमज़ोर होता जाएगा.

shashishekhar@chauthiduniya.com

सूचना आयुक्त की नियुक्ति, ऐसे होता है खेल

5 अक्टूबर 2005, चयन समिति की बैठक

किसने किया आवेदन

जी सी श्रीवास्तव, आईएएस (रिटायर्ड).
लक्ष्मी चंद, आईएएस (रिटायर्ड).
आर गणेशन, सचिव, डाक विभाग.
जी मोहल कुमार, सदस्य, डाक विभाग.
पी आर देवी प्रसाद, आईईएस.
के जय कुमार, निदेशक.
रमेश भाई (निर्मला देशपांडे की अनुशंसा).
नीना रंजन, सचिव, संस्कृति मंत्रालय.
प्रो. अख्तरूल वासे, डीन, जामिया मिलिया इस्लामिया.
प्रदीप कुमार बालमुचु.
नृपेंद्र मिश्रा.
मोहन कांडा, मुख्य सचिव, आंध्र प्रदेश.
दिनेश चंद्र गुप्ता, पूर्व वित्त सचिव.
प्रो. डॉ. बी के चंद्रशेखर, पूर्व शिक्षा मंत्री, कर्नाटक.
अख्तर मजीद, डीन, हमदर्द यूनिवर्सिटी.

एजेंडा नोट के साथ चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत नाम
उपरोक्त नामों में से एक भी नाम नहीं.

5 अन्य नाम
वजाहत हबीबुल्लाह
ओ पी केजरीवाल
ए एन तिवारी
पद्मा बालासुब्रह्मण्यम,
एम एम अंसारी

चयन समिति द्वारा उपरोक्त सभी 5 नाम चुन लिए गए.

27 अगस्त 2008, चयन समिति की बैठक

किसने किया आवेदन
सुधांशु रंजन (पत्रकार).
डॉ. कृष्ण कबीर एंथोनी.
रवि शंकर सिंह (पत्रकार).
सभी के नामों की अनुशंसाएं केंद्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री एवं सांसदों ने की थी.

एजेंडा नोट के साथ चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत नाम
उपरोक्त नामों में से एक भी नाम नहीं.
6 अन्य नाम
अन्नपूर्णा दीक्षित
अशोक मोहपात्रा
आर बी श्रीकुमार
एम एल शर्मा
शैलेश गांधी
एस एन मिश्रा
चयन समिति द्वारा चुने गए नाम
अन्नपूर्णा दीक्षित
एम एल शर्मा
शैलेश गांधी
एस एन मिश्रा

6 अप्रैल 2009, चयन समिति की बैठक

आचार संहिता की हुई अनदेखी. यह बैठक अचानक हुई. आम चुनाव का समय था. फाइल में कोई नाम नहीं था. चयन समिति के समक्ष सिर्फ़ एक नाम ओमिता पॉल का रखा गया. चयन समिति ने ओमिता पॉल के नाम पर मुहर लगा दी. ओमिता पॉल भी ब्यूरोक्रेट हैं. आचार संहिता की अनदेखी कर ओमिता पॉल को बनाया गया था सूचना आयुक्त. 16 अप्रैल से 13 मई के बीच लोकसभा चुनाव हुए थे. 13 मई को पॉल ने शपथ ली थी. 18 मई से आयोग के दफ्तर जाना शुरू किया. 23 मई को प्रणब मुखर्जी वित्तमंत्री बनाए जाते हैं. 26 मई को पॉल सूचना आयुक्त के पद से इस्तीफ़ा दे देती हैं और उसी दिन वित्तमंत्री की सलाहकार बना दी जाती हैं.

25 अगस्त 2009, चयन समिति की बैठक

किसने किया आवेदन
सुषमा सिंह, सचिव, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (मंत्री आनंद शर्मा ने की थी अनुशंसा).
डॉ. सी वी आनंद बोस, (मंत्री व्यालार रवि की अनुशंसा).
सरोज बाला सदस्य, सीबीडीटी.
श्री चौबे (वीरप्पा मोइली की अनुशंसा).
प्रदीप कौशिवा (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
ले. जनरल महाजन (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
अमिताभ त्रिपाठी (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
नीलम देव (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
माजा दारूवाला (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
कृष्ण एम साहनी (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
चित्रा चोपड़ा (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
सुमन दुबे (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
इश्तिकाक हुसैन (वजाहत हबीबुल्लाह की अनुशंसा).
सुधांशु रंजन (सदानंद सिंह की अनुशंसा).

एजेंडा नोट के साथ चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत नाम
सिर्फ सुषमा सिंह का नाम उपरोक्त नामों में से चुना गया.
इसके अलावा डीओपीटी ने अन्य 3 नाम भी चयन समिति के समक्ष रखे.
सुषमा सिंह.
दीपक संधु.
महेंद्र कुमावत
आर पी अग्रवाल
चयन समिति द्वारा चुने गए नाम
सुषमा सिंह, दीपक संधु (दोनों ब्यूरोक्रेट्स).

मानवाधिकार कार्यकताओं एवं संगठनों ने इन प्रतिबंधों को घोर आपत्तिजनक बताया है और यूरोपियन मानवाधिकार संसदीय समिति ने इन्हें ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया है.

राज्य, धर्म और समाज सुधार

अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला प्रबुद्ध एवं आधुनिक विचारों वाले शासक थे. 1920 और 1930 के दशकों में उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के रूढ़िग्रस्त कबीलाई समाज में परिवर्तन लाने की कोशिशें कीं. नतीजे में उनके ख़िलाफ़ विद्रोह हो गया और उन्हें अपनी गद्दी खोनी पड़ी.

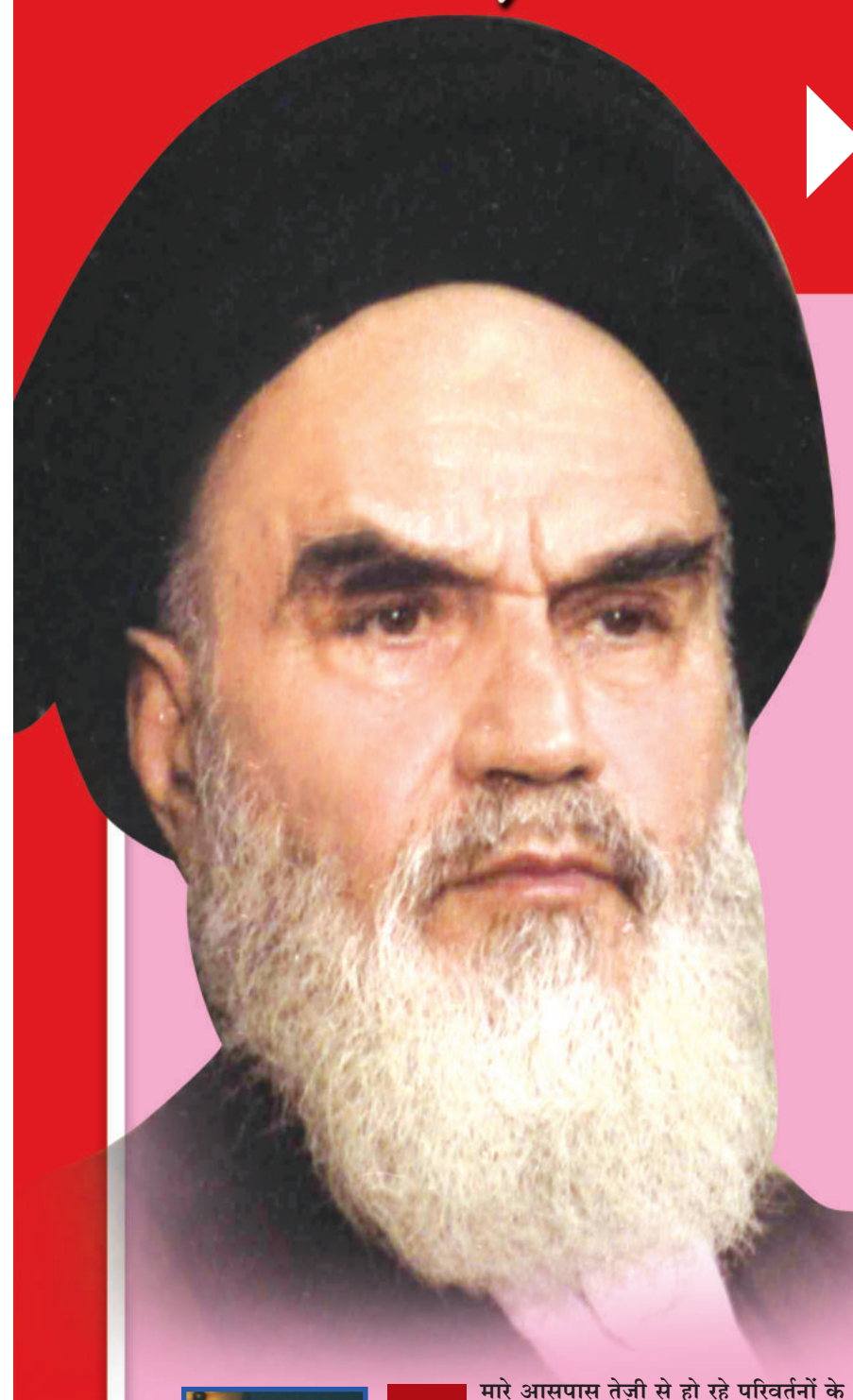

डॉ. असगर अली इंजीनियर

हमारे आसपास तेज़ी से हो रहे परिवर्तनों के मद्देनज़र समाज सुधारों की आवश्यकता से कोई इंकार नहीं कर सकता. ऐसे सुधार जितनी जल्दी हो सकें, उतना ही अच्छा होगा. समाज सुधारों के संबंध में दो प्रश्न महत्वपूर्ण हैं. पहला यह कि इनमें राज्य की क्या भूमिका हो? दूसरा यह कि धर्म की क्या भूमिका हो? कुछ लोगों का मानना है कि राज्य को इसमें सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए और समाज सुधार के लिए हरसंभव प्रयास करने चाहिए. कुछ लोग यह मानते हैं कि समाज सुधार में धर्म की कोई भूमिका नहीं है, बल्कि वह तो सामाजिक परिवर्तनों की राह में रोड़ा है. जो लोग राज्य की सक्रिय भूमिका के हामी हैं, वे या तो राजनीति से प्रेरित हो सकते हैं या उनका यह विश्वास हो सकता है कि राज्य एक शक्तिशाली संस्था है और वह समाज में परिवर्तन एवं सुधार लाने में पूर्णत: सक्षम है. इस संदर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि राज्य प्रजातांत्रिक है या निरंकुश. कोई तानाशाह, चाहे वह स्वयं कितना ही उदार एवं ज्ञानी क्यों न हो, समाज सुधार नहीं ला सकता. ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं.

अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला प्रबुद्ध एवं आधुनिक विचारों वाले शासक थे. 1920 और 1930 के दशकों में उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के रूढ़िग्रस्त कबीलाई समाज में परिवर्तन लाने की कोशिशें कीं. नतीजे में उनके ख़िलाफ़ विद्रोह हो गया और उन्हें अपनी गद्दी खोनी पड़ी. इसके साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भी उन्हें अपदस्थ करने में भूमिका निभाई. दूसरा उदाहरण ईरान के शाह का है. उन्होंने ईरानी जनता को आधुनिक तौर-तरीक़े अपनाने के लिए बाध्य किया और एक तरफ़ अयातुल्लाओं, तो दूसरी तरफ़ परंपरावादी कृषक वर्ग को नाराज़ कर लिया. उन्हें भी अपनी गद्दी खोनी पड़ी. यद्यपि उसके पीछे अन्य कारण भी थे, जैसे उनका अमेरिका के पिट्ठू बतौर काम करना और अयातुल्लाह खुमैनी को देश निकाला दे देना.

दूसरी ओर प्रजातांत्रिक राज्य को मतदाताओं की धार्मिक भावनाओं का भी ख्याल रखना पड़ता है. उस पर अलग-अलग दिशाओं से परस्पर विरोधी दबाव भी पड़ते हैं. भारत के उदारवादी एवं प्रबुद्ध हिंदू वर्ग ने पंडित नेहरू और अंबेडकर के नेतृत्व में स्वतंत्रता के तुरंत बाद हिंदू विधि में उपयुक्त परिवर्तन लाने के उद्देश्य से हिंदू कोड बिल तैयार किया, परंतु परंपरावादियों के कड़े विरोध के कारण उन्हें यह बिल वापस लेना पड़ा और बाद में उसका अत्यंत कमज़ोर संस्करण संसद से पारित हो सका. नेहरू जी का ऊंचा राजनीतिक कद और उनका करिश्माई व्यक्तित्व भी किसी काम न आया. डॉ. अंबेडकर को तो इससे इतना धक्का पहुंचा कि उन्होंने क़ानून मंत्री के पद से इस्तीफ़ा दे दिया.

समान नागरिक संहिता हमेशा से भाजपा के हिंदुत्व गठबंधन के एजेंडे में शामिल रही है. उसने इसके पक्ष में देश में वातावरण बनाने का प्रयास भी किया, परंतु शहरी हिंदू मध्यम वर्ग के अलावा वह किसी और तबके को अपने साथ नहीं ले सकी. इसी कारण यद्यपि भाजपा के नेतृत्व वाला एनडीए गठबंधन छह साल तक सत्ता में रहा, तथापि वह समान नागरिक संहिता लागू नहीं कर सका. इस तरह प्रजातांत्रिक राज्य में समाज सुधार की राह में अलग तरह के रोड़े हैं. राज्य तभी हस्तक्षेप कर सकता है, जबकि मामला मानव जीवन या क़ानून और व्यवस्था से जुड़ा हो. जैसे कि ब्रिटिश सरकार ने सती प्रथा प्रतिबंधित कर दी थी. यद्यपि सती प्रथा पारंपरिक हिंदू क़ानून का हिस्सा थी, तथापि यहां सवाल निर्दोष स्त्रियों को ज़िंदा जला दिए जाने से बचाने का था. इसी तरह इन दिनों ऑनर किलिंग (इज़्ज़त के लिए हत्या) का दौर चल रहा है. हो सकता है कि धार्मिक परंपरा सगोत्र या अंतरजातीय विवाह की आज्ञा न देती हो, परंतु किसी को दूसरे की जान लेने की इजाज़त नहीं दी जा सकती. इस मामले में राज्य को प्रभावी हस्तक्षेप करके हत्याओं के इस शर्मनाक सिलसिले को तुरंत रोकना चाहिए. अगर इस तरह के मामलों में राज्य तुरंत हस्तक्षेप नहीं करता है तो और अधिक निर्दोषों का ख़ून बहने की आशंका बनी रहती है. लेकिन समाज सुधार के सभी मामले इस श्रेणी में नहीं आते और अन्य मामलों में राज्य को फूंक-फूंक कर क़दम बढ़ाना चाहिए. ऐसा ही एक मसला लैंगिक न्याय का है. इस मामले में सदियों पुरानी परंपराएं और रीति-रिवाज हैं. समस्या यह है कि इन्हें धर्म का हिस्सा मान लिया गया है.

इस तरह समाज सुधार के दो अलग-अलग पहलू हैं. पहली श्रेणी में हैं शुद्ध सामाजिक मसले, जैसे दहेज प्रथा, सामाजिक बहिष्कार आदि. दूसरी श्रेणी में आते हैं विवाह, तलाक आदि से संबंधित पर्सनल लॉ, जिन्हें धर्म का हिस्सा माना जाता है. पर्दा प्रथा और ड्रेस कोड से जुड़े मसले भी हैं, जिन्हें कुछ लोग धार्मिक मानते हैं तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक. जो भी हो, उक्त मुद्दे अत्यंत संवेदनशील हैं. क्या राज्य कोई ड्रेस कोड लागू कर सकता है? जहां भी ऐसी कोशिश हुई है, कामयाब नहीं हुई. अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह अमानउल्ला और ईरान के शाह दोनों ने पर्दा प्रथा ख़त्म करने का प्रयास किया और दोनों असफल रहे. इन दिनों यूरोप में बुर्के को लेकर बवाल मचा हुआ है. बेल्जियम ने बुर्के को प्रतिबंधित कर दिया है और फ्रांस ऐसा करने जा रहा है. मानवाधिकार कार्यकताओं एवं संगठनों ने इन प्रतिबंधों को घोर आपत्तिजनक बताया है और यूरोपियन मानवाधिकार संसदीय समिति ने इन्हें ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया है. कोई व्यक्ति क्या पहने और क्या न पहने, इसका निर्णय उस पर छोड़ दिया जाना चाहिए. यह भी सही है कि अक्सर यह निर्णय संबंधित व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक नहीं ले पाता. महिलाओं पर बुर्का पहनने का सामाजिक दबाव रहता है. यद्यपि कई महिलाएं अपनी अलग पहचान दर्शाने के लिए या सांस्कृतिक परंपरा के कारण भी बुर्का पहनती हैं. अगर किसी महिला को बुर्का पहनने पर मजबूर किया जा रहा हो, धमकी दी जा रही हो या दबाव डाला जा रहा हो, तब तो कोई कार्यवाही की जा सकती है, परंतु यह कार्यवाही भी बुर्के पर प्रतिबंध लगाना कतई नहीं हो सकती. वैसे भी अगर बुर्के पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है तो इससे सबसे ज़्यादा परेशानी महिलाओं को ही होगी. एक ओर उन पर बुर्का पहनने के लिए समाज एवं परिवार का दबाव होगा और दूसरी ओर जुर्माने या जेल जाने का डर.

यहां परिवर्तन के विरोध के कारणों पर कुछ चर्चा उचित होगी. उन्नीसवीं सदी में आधुनिक युग की शुरुआत के साथ ही तार्किकता का जोर बढ़ा. इस नए युग का सबसे ज़्यादा लाभ पढ़े-लिखे श्रेष्ठ वर्ग ने उठाया. इस वर्ग को यह भ्रम हो गया कि धर्म और परंपरा का युग समाप्त हो गया है और अब दुनिया पर विज्ञान का राज होगा, लेकिन इस वर्ग के लोग भूल गए कि उनका सामाजिक आधार बहुत छोटा था. भारत सहित अन्य देशों में समाज का बड़ा हिस्सा पिछड़ा, रूढ़िग्रस्त एवं पारंपरिक बना रहा. इसके अलावा परिवर्तन की प्रक्रिया जटिल थी. आधुनिकता एक ओर तकनीकी परिवर्तन लाई तो दूसरी ओर सामाजिक और परंपरा से जुड़े मुद्दों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव आने लगा. तकनीकी परिवर्तनों का तनिक भी विरोध नहीं हुआ, क्योंकि उनसे सब लाभांवित हो रहे थे. रेलवे, कारों, घड़ियों, रेडियो, टेलीविज़न, कंप्यूटर एवं मोबाइल आदि को समाज ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हें अपनी रोजमर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा बना लिया. यहां तक कि पुरातनपंथी धार्मिक नेता भी इन नए औजारों और अविष्कारों का इस्तेमाल करने लगे.

आज परंपरावादी, दकियानूसी धार्मिक नेता भी कंप्यूटर और इंटरनेट का उपयोग अपने विचारों को फैलाने के लिए कर रहे हैं. उनकी अपनी वेबसाइटें हैं. मोबाइलों पर शादियां हो रही हैं और तलाक भी. एक समय इंग्लैंड के पुरोहित वर्ग ने रेलवे का इस आधार पर विरोध किया था कि तेज़ गति से आवागमन की इस सुविधा का ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले युवा दुरुपयोग करेंगे. वे शहरों में जाएंगे और शराब पीना एवं जुआ खेलना सीखेंगे. आज हालत यह है कि ईसाई पादरी, इस्लामिक उलेमा, शंकराचार्य और सिख ग्रंथी सभी जेट हवाई जहाजों में सफर करते हैं. स्पष्टत: जिस चीज में किसी व्यक्ति को अपना फ़ायदा नज़र आता है, उसे वह बिना किसी गुरेज के स्वीकार कर लेता है. अपितु मसला जब विवाह, तलाक, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, चयन के अधिकार या लैंगिक न्याय से जुड़ा होता है तो परिवर्तन को आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता और कभी-कभी तो उसका कड़ा विरोध होता है. पुरोहित वर्ग ऐसे परिवर्तनों को धर्म के लिए ख़तरा क़रार दे देता है, क्योंकि इन परिवर्तनों से उसके नेतृत्व एवं प्रभुत्व को चुनौती मिलती है. ग़रीबी और अशिक्षा पुरोहित वर्ग के प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाती है. वंचित वर्ग सदियों पुरानी परंपराओं से चिपका रहता है, क्योंकि परिवर्तन में उसे अपना कोई फ़ायदा नज़र नहीं आता. उल्टे ग़रीब एवं अशिक्षित तबके को ऐसा लगता है कि परिवर्तनवादी लोग उसकी परंपराओं एवं प्रथाओं से अनावश्यक छेड़छाड़ कर रहे हैं. इससे परिवर्तनों की राह कठिन हो जाती है और राज्य असहाय नज़र आने लगता है.

इस प्रकार धर्म और सामाजिक परिवर्तन का ऐसा घालमेल हो जाता है कि ऊपरी तौर पर देखने से प्रतीत होता है कि धर्म सामाजिक परिवर्तन की राह में बाधक है. यह मान्यता सही नहीं है. अगर संवेदनशीलता और रचनात्मकता से काम लिया जाए तो धर्म और धार्मिक ग्रंथ बदलाव के प्रभावी हथियार बन सकते हैं. आख़िरकार यह ज़रूरी तो नहीं कि हम धार्मिक शिक्षाओं की उसी व्याख्या को स्वीकार करें, जो सदियों से चली आ रही है. क्या धर्मग्रंथों की व्याख्या करने पर पुरोहित वर्ग का एकाधिकार है? हम धार्मिक शिक्षाओं की वर्तमान व्याख्या का रचनात्मक ढंग से विरोध कर सकते हैं. हम इन शिक्षाओं की नई व्याख्या और नई समझ विकसित कर सकते हैं. यही तरीक़ा राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को चुनौती देने के लिए अपनाया था और इसी राह पर चलकर सर सैय्यद अहमद ख़ान ने मुसलमानों को आधुनिक शिक्षा पाने एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया था. उन्होंने कुरान और हदीस की पुनर्व्याख्या की. उन्होंने कहा कि ईश्वर की वाणी (अर्थात कुरान) कभी ईश्वर के कृत्य (अर्थात उसके बनाए हुए इस ब्रह्मांड) की विरोधी नहीं हो सकती. और विज्ञान क्या है? वह केवल ईश्वर की सृष्टि का सुव्यवस्थित अध्ययन ही तो है. इसी प्रकार लैंगिक न्याय के हित में सभी धर्मों के सुधारकों ने धार्मिक ग्रंथों का रचनात्मक इस्तेमाल किया. मुसलमानों में मौलवी चिराग अली एवं मौलवी मुमताज़ अली ख़ान ने भारत में और मोहम्मद अब्दू ने मिस्र में कुरान एवं हदीस की वैकल्पिक व्याख्या कर महिलाओं को उनके अधिकार दिलाए. तीसरी दुनिया के देशों में ग़रीबी और अशिक्षा सामाजिक बदलाव की राह में बड़े रोड़े हैं. समाज सुधारकों की आवाज बहुत कम लोगों तक पहुंच पाती है. जैसे-जैसे शिक्षा और जागरूकता बढ़ेगी, उनका प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ेगा. अगर राज्य क़ानून के ज़रिए समाज सुधार लाने की कोशिश करने के बजाय ग़रीबी एवं अशिक्षा को मिटाने पर ध्यान दे और सामाजिक नेता समाज को परिवर्तन की आवश्यकता का भान कराने का प्रयत्न करें तो इससे काम बन सकता है. यह सब कहना जितना आसान है, करना उतना ही कठिन है. कई शक्तिशाली निहित स्वार्थ किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरोधी हैं. यदि ग़रीबी उन्मूलन के लिए गंभीर प्रयास किए जाते हैं तो इससे आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग बेचैन हो जाता है, क्योंकि इन प्रयासों का नतीजा होगा टैक्सों में बढ़ोत्तरी, राज्य के हस्तक्षेप में वृद्धि और आर्थिक संसाधनों का पुनर्वितरण. इसी तरह धार्मिक श्रेष्ठि वर्ग समाज में जागरूकता बढ़ने से घबराता है. इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि परिवर्तन लाना असंभव है. हमारा उद्देश्य केवल यह जताना है कि समाज सुधारकों के समक्ष कठिन चुनौतियां हैं. केवल आशावादिता, आस्था, धैर्य और सही रणनीति से उन्हें मदद मिल सकती है.

आज परंपरावादी, दकियानूसी धार्मिक नेता भी कंप्यूटर और इंटरनेट का उपयोग अपने विचारों को फैलाने के लिए कर रहे हैं. उनकी अपनी वेबसाइटें हैं. मोबाइलों पर शादियां हो रही हैं और तलाक भी. एक समय इंग्लैंड के पुरोहित वर्ग ने रेलवे का इस आधार पर विरोध किया था कि तेज़ गति से आवागमन की इस सुविधा का ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले युवा दुरुपयोग करेंगे. वे शहरों में जाएंगे और शराब पीना एवं जुआ खेलना सीखेंगे.

(लेखक सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोसायटी एंड सेक्युलरिज्म के संयोजक हैं)

feedback@chauthiduniya.com

मैं दादा से जब भी मिला तो मैंने महसूस किया कि उनका पूरा जोर बिहार के वास्तविक विकास पर था.

पुतुल के कंधों पर दादा के ख़्वाब

सरोज सिंह

दिग्विजय सिंह, जिन्हें हर कोई प्यार से दादा कहकर बुलाता था, अक्सर कहा करते थे कि गुजरात क्यों, बिहार क्यों नहीं? क्या नहीं है बिहार में? बस, विकास का विजन होना चाहिए, सब कुछ पटरी पर दौड़ता दिखेगा. दादा नहीं रहे, पर सपनों की कोई उम्र नहीं होती, उन्हें तो बस देखने वाली आंखें और आगे ले जाने वाले कंधे चाहिए. दादा को प्यार करने वाला हर शख्स आज यही चाहता है कि बिहार और देश के लिए उन्होंने जो ख्वाब बुने थे, उन्हें हर सूरत में अमलीजामा पहनाया जाए, ताकि कोई यह न कहे कि दादा को श्रद्धांजलि देने में कोई कमी रह गई. लंदन जाने से ठीक पहले पटना के संतोषा अपार्टमेंट में उनसे आख़िरी मुलाक़ात हुई. हमेशा की तरह उन्होंने गर्मजोशी से स्वागत कर बैठाया और फिर देश–दुनिया की गतिविधियों पर चर्चा शुरू हो गई. सामने टीवी पर प्रसारित हो रहे बंगाल निकाय चुनाव के नतीजों से आनंदित दादा कहने लगे, ममता दो तिहाई बहुमत से विधानसभा का चुनाव जीतेगी. ममता बनर्जी की तारीफ़ों के पुल बांधते हुए उन्होंने कहा कि संघर्ष करना कोई उससे सीखे. इतने में पी के सिन्हा आ गए तो किसी ने कहा कि लीजिए, आ गए बिहार की ममता बनर्जी. दादा ने भी इस बात को दोहराया और फिर बात बिहार के विकास को लेकर शुरू हो गई. बिजली, उद्योग, पूंजी निवेश और शिक्षा के मामले में पिछड़ते बिहार को लेकर दादा खासे चिंतित रहते थे. उस दिन भी बात बिजली की चली तो कहने लगे, दस साल लग जाता है एक परियोजना को पूरा होने में. क्या कहें, इतना वक़्त बीत गया, अभी तो किसी की शुरुआत भी नहीं हो पाई है. अब देर हो रही है, मांग रोज़ बढ़ेगी. अगर अभी भी हम नहीं चेते तो आगे आने वाली पीढ़ी को क्या जवाब देंगे. किसी ने कहा, शायद केंद्र भी असहयोग कर रहा है. दादा के स्वर तेज़ हुए, अरे केंद्र कैसे नहीं सहयोग करेगा, हम तो लड़कर बिहार का हक़ लेंगे. ऐसा थोड़े होता है. देखिए, बिजली नहीं होगी तो कुछ नहीं कर पाइएगा. अंधेरे में कौन पैसा लगाएगा.

मैं दादा से जब भी मिला तो मैंने महसूस किया कि उनका पूरा जोर बिहार के वास्तविक विकास पर था. कहते थे, जब तक बाहर का पैसा राज्य में नहीं लगेगा, पलायन नहीं रुकेगा. सही विकास तभी होगा, जब पूरे राज्य में उद्योगों का जाल बिछाया जाएगा. छोटे–बड़े उद्योगों की बुनियाद ही स्वर्णिम बिहार का सपना साकार करेगी. दादा चाहते थे कि किसानों को इनके उत्पादों का सही मूल्य मिले. वह ऐसी इकाइयों की स्थापना चाहते थे, जिनमें किसानों के उत्पादों की खपत हो, ताकि उनकी बदहाली दूर हो सके. दादा रोज़गार से जुड़ी शिक्षा के पक्ष में थे. वह कहा करते थे कि अगर युवाओं को सही शिक्षा और उसके बाद सही रोज़गार नहीं मिलेगा तो विनाश तय है. इसलिए वह राज्य में उच्च एवं तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देना चाहते थे.

जाति एवं धर्म से ऊपर उठकर विकास की राजनीति को दादा बहुत तवज्जो देते थे. बांका से चुनाव जीतने के बाद एक समर्थक ने उनसे कहा कि आप तो पूरे राजपूत समाज के नेता हो गए. दादा इस बात पर काफी नाराज़ हुए और उन्होंने कहा कि मुझे जाति के बंधन में मत बांधो. लोक मोर्चा के गठन के पीछे उनका मक़सद अच्छे और काम करने वाले लोगों को एकजुट करना था, न कि किसी जाति विशेष के लोगों को. बांका के सांसद बनने के बाद बिहार में ज़्यादा से ज़्यादा समय देने का उन पर काफी दबाव पड़ने लगा. उनकी बेदाग छवि और विकास के प्रति उनके विजन को देखते हुए कई बड़े नेताओं को लगने लगा था कि बिहार की जनता दादा को नेता के तौर पर स्वीकार कर लेगी. किसान महापंचायत की तैयारियों के सिलसिले में दादा जहां भी गए, वहां लोगों ने उन्हें एक विकल्प के तौर पर देखा. एक बार जब मैंने उनसे पूछा कि महापंचायत के कुछ नेताओं की छवि पूरी तरह बेदाग नहीं है तो वह थोड़ा रुके और फिर बोले, बिहार की लड़ाई लड़नी है तो उसे बिहार के लोग ही लड़ेंगे. कोई बाहर से आदमी आएगा नहीं. कोशिश करेंगे कि सभी लोग बिहार के बारे में ही सोचें और इसे आगे ले जाने की पहल करें. बिहार को लेकर उनकी चिंता *चौथी दुनिया* में प्रकाशित उनके एक साक्षात्कार में भी साफ झलकती है, जिसमें उन्होंने कहा था कि बिहार की मिट्टी में पैदा हुआ हूं, इसलिए यहां का दर्द समझता हूं. अगर इस मिट्टी के लिए कुछ कर पाया तो अपने आप को सौभाग्यशाली मानूंगा.

दादा बहुत कुछ करना चाहते थे, पर उनके ख्वाबों को काल ने अपना ग्रास बना लिया. लेकिन अब सबसे बड़ा सवाल सामने है कि क्या उनके ख्वाब बिखर जाएंगे. उनके परिवार के लोग, उनके दोस्त, उन्हें चाहने और नेता मानने वाले लोगों के मन में आख़िर क्या चल रहा है. दादा सबके लिए सुलभ थे और सबको प्यार करते थे और यही उनकी ताक़त थी. इसी ताक़त से उन्होंने अपने दोस्तों एवं चाहने वालों का एक बहुत बड़ा संसार बनाया. लाल कोठी में उनके समर्थकों की नम आंखों को पढ़ने पर लगा कि सभी चाहते हैं कि दादा का हर ख्वाब पूरा हो. दादा को कोई खोना नहीं चाहता है और यह तभी संभव है, जब उनके सपनों को अमलीजामा पहनाया जाए. विकास के उनके विजन को ज़मीन पर उतारा जाए. जिस तरह की राजनीति के वह पक्षधर थे, उसे ताक़त प्रदान की जाए और जिस बिहार को वह गुजरात से आगे ले जाना चाहते थे, उसके लिए रात–दिन एक कर दिया जाए. दादा के जाने के बाद उनकी पत्नी पुतुल सिंह पर क्या बीत रही होगी, इसका अंदाजा सहज लगाया जा सकता है. उनकी दोनों बेटियां एवं भाई त्रिपुरारी जी गम में डूबे हैं. यह स्वाभाविक भी है, पर एक बात याद दिलानी है कि जब बांका से दादा को जदयू का टिकट नहीं मिला तो उन्होंने समझौते का रास्ता न चुन संघर्ष को अपना मूलमंत्र बनाया. राज्यसभा से इस्तीफ़ा देकर अपने इरादों को और धारदार बनाया. गांव–गांव पैदल घूमकर लोगों को यह बताया कि स्वाभिमान से समझौता नहीं होगा, संघर्ष के रास्ते पर हूं, अब आपका सहयोग चाहिए. बांका में दादा को सभी का सहयोग मिला और वहां विजय हासिल करके उन्होंने यह साबित कर दिया कि अगर रास्ता सही हो और इरादा मज़बूत हो तो कठिन से कठिन मंजिल भी हासिल हो सकती है. आज एक बार फिर संकट की घड़ी आ गई है, सही रास्ता चुनने का समय आ गया है, दादा के ख्वाबों को पूरा करने की कठिन चुनौती सामने है, दोस्त और दुश्मन का चेहरा एक सा लग रहा है. फ़ैसला पुतुल सिंह को लेना है. जिस राह पर उन्हें चलना है, वह आसान नहीं है, पर ऐसे ही हालात में नायक उभरते हैं. परीक्षा की इस कठिन घड़ी में उन्हें दादा को चाहने वाले असंख्य लोगों की भावनाओं और बिहार को लेकर उनके सपनों को देखना है. दादा के ख्वाबों को पुतुल सिंह का कंधा मिलना ज़रूरी है, ताकि बिहार को लेकर उनकी परिकल्पना साकार हो सके और उन्हें सही मायनों में श्रद्धांजलि दी जा सके.

feedback@chauthiduniya.com

बंगाल को खाक कर देगी नानूर की चिंगारी

बिमल राय

बंगाल के माथे पर देश की सांस्कृतिक राजधानी होने का ताज है, पर हाल के वर्षों में इसने कई और रिकार्ड बनाए हैं. किसी दल के लगातार 33 साल शासन में रहने का रिकॉर्ड इसके नाम है तो राजनीतिक हत्याओं के मामले में भी यह देश का सबसे कुख्यात राज्य बन गया है. बंगाल के आज के हालात बिहार के उन दिनों की याद दिलाते हैं, जब निजी सेनाओं के हाथों किए जाने वाले नरसंहार सुर्खियां बने रहते थे, पर बंगाल अब काफ़ी आगे निकल गया है. वैसे तो हिंसा की चिंगारी पूरे बंगाल की हवा में तैर रही है, लेकिन हाल के सालों में वीरभूम ज़िले का नानूर और बर्दवान ज़िले का मंगलकोट ज्वालामुखी बन गए हैं. यहां से उठते लावों ने आसपास के गांवों को तो चपेट में ले ही लिया है, पड़ोस में माओवादी जले पर नमक छिड़क रहे हैं.

हाल में कोलकाता नगर निगम एवं अन्य स्थानीय निकाय चुनावों में तृणमूल की जीत और राज्य माकपा की बैठक में पार्टी में नई जान फूंकने की कवायद के कारण टकराव बढ़ गया है. चुनावी राजनीति गरमाती जा रही है और सत्ता के केंद्र कोलकाता का तापमान भी बढ़ता जा रहा है. इन दोनों गांवों की आग में बलि चढ़ रहे हैं ग़रीब कार्यकर्ता. मतलब यह कि राजनीतिक बकरे हलाल हो रहे हैं. नेता राजनीतिक रोटियां सेंक रहे हैं. खोई हुई ज़मीन पाने और नई राजनीतिक ज़मीन हथियाने की इस जंग के अगले विधानसभा चुनावों तक थमने के आसार नज़र नहीं आते. इस हालात में, जबकि आरोप है कि कुछ राजनीतिक दल अपने चुनावी फ़ायदे के लिए इस आग को जलाए रखना चाहते हैं, अमन की उम्मीद करना रेगिस्तान में पानी खोजने जैसा है.

हाल की हिंसा नानूर में माकपा के पूर्व विधायक आनंद दास की हत्या के कारण भड़की है. 2000 में नानूर में हुई 11 हत्याओं के बाद यहां तृणमूल के राजनीतिक क़दम पड़े और एक पंचायत पर उसका क़ब्ज़ा हुआ. फिर क्या था, वामदलों का गढ़ कहे जाने वाले इस इलाक़े में ख़ूनख़राबा शुरू हो गया. नानूर के संबंध में सीआईडी ने मुख्यमंत्री को जो रिपोर्ट सौंपी है, उसके मुताबिक़ सूचपुर, पापुरी, थुपसारा एवं बासापाड़ा में दोनों गुटों के लोगों ने बड़ी मात्रा में हथियार और गोला–बारूद इकट्ठा कर रखा है. इस वजह से एक चिंगारी उठते ही हिंसा भड़क उठती है. कहा जा रहा है कि पूर्व विधायक के हत्यारे कभी माकपा समर्थक ही थे, पर सत्ता परिवर्तन की बयार देख उन्होंने पाला बदल लिया है. वैसे नानूर वाममोर्चा के घटकों के बीच की आपसी जंग का इतिहास भी समेटे हुए है. इसी साल 20 मार्च को माकपा समर्थक उपद्रवियों ने आरएसपी कार्यकर्ता शमसुल हुदा के घर में आग लगा दी. माकपा–आरएसपी नेताओं ने बैठकें कर तनाव कम करने की कोशिश की, पर वे कामयाब नहीं हुए, क्योंकि बताने की बात नहीं कि उपद्रवी तत्वों की राजनीतिक प्रतिबद्धता की डोर काफी कमज़ोर होती है और वह धन एवं राजनीतिक संरक्षण के आक्सीजन से ज़िंदा रहती हैं. उपद्रवी तत्व अपने हितों के लिए दुश्मनी का माहौल जारी रखना चाहते हैं. इनमें से ज़्यादातर तृणमूल में शामिल हो चुके हैं. पालिका चुनावों के बाद पाला बदलने की प्रक्रिया और तेज़ हो गई है.

पाला बदल का संकेत पुलिस महकमे में भी मिल रहा है. लगातार तीन दशक के शासन में पुलिस के सामने कोई असमंजस नहीं था, पर अब बदलाव की हवा के कारण माकपा की बात मानने वाले अफसर अपनी छवि बदल कर भविष्य सुरक्षित करने में लगे हैं. मालूम हो कि 1977 में भी पुलिस को इसी वैचारिक संक्रांति का सामना करना पड़ा था, जब नक्सली उत्पात और इमर्जेंसी के बाद सिद्धार्थ शंकर राय के ख़िलाफ़ हवा बन गई थी. पूर्व विधायक की हत्या के बाद सरकार ने सबसे पहला क़दम वीरभूम के एसपी रवींद्रनाथ मुखर्जी के तबादले के रूप में उठाया. वैसे कहा गया कि यह रुटीन तबादला है. वामदलों ने पुलिस पर निशाना साधा, क्योंकि पहले पूर्व विधायक के घर में तोड़फोड़ और फिर घर से खींचकर उनकी हत्या की गई. मुख्यमंत्री ने भी कहा कि नानूर में पुलिस ने लापरवाही बरती. उन्होंने यह उम्मीद जताई कि नए एसपी हुमायूं कबीर वहां हालात क़ाबू में कर पाएंगे. इसे लेकर जब विधानसभा में वाममोर्चा के घटक आरएसपी के विधायकों ने हो–हल्ला किया तो मुख्यमंत्री ने सदन में ही एसपी के तबादले का ऐलान किया. विधानसभा के स्पीकर ने भी माना कि उन्होंने कभी मुख्यमंत्री को सदन में किसी पुलिस अधिकारी के तबादले का ऐलान करते हुए नहीं सुना. मुख्यमंत्री का ऐलान दूसरे ज़िलों के पुलिस अफसरों के लिए भी एक संदेश था कि वे उपद्रव रोकने के लिए सक्रिय हों. इधर माकपा की पीड़ा इसलिए बढ़ गई है कि उसे तृणमूल के उपद्रवियों के साथ माओवादी हिंसा का भी सामना करना पड़ रहा है.

राज्य माकपा सचिव विमान बोस के मुताबिक़, 2009 के लोकसभा चुनावों के बाद जंगल महल यानी बांकुड़ा, पुरुलिया और मिदनापुर में 242 वाम समर्थक मारे गए हैं. उधर एसपी के तबादले पर ममता ने बुद्धदेव पर निशाना साधा है. उन्होंने कहा कि मुख्यमंत्री राजनीतिक रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं. वर्ष 2000 में जब नानूर में 11 तृणमूल कार्यकर्ताओं की हत्या की गई थी, तब क्यों नहीं तबादले किए गए? उन्होंने दावा किया कि केवल नानूर में पिछले कुछ सालों में 20 तृणमूल कार्यकर्ताओं की हत्या की गई. मालूम हो कि उस समय वाममोर्चा ने इन 11 लोगों को डकैत कहा था. इस तरह ज्योति बसु के शासनकाल से ही नानूर हिंसा का केंद्र बना हुआ है. हिंसा का दूसरा ज्वालामुखी बर्दवान के मंगलकोट में सुलग रहा है. मंगलकोट में तृणमूल के नेता शमशुर रहमान की हत्या के बाद आग भड़की. बाद में इसमें कांग्रेसी भी झुलस गए. मंगलकोट के कुलसोना गांव में बीती 6 जुलाई को माकपा–कांग्रेस समर्थकों के बीच हुई झड़पों में 3 लोग घायल हो गए और पुलिस को मोर्चा संभालना पड़ा.

कांग्रेस विधायक रवींद्रनाथ चटर्जी ने कहा कि बमों के हमले में पार्टी के 17 कार्यकर्ता घायल हुए. दोनों दलों के नेता एक–दूसरे पर तीन परिवारों के घर जलाने का आरोप लगा रहे हैं. मंगलकोट पिछले साल तब सुर्ख़ियों में आया, जब माकपा समर्थकों ने बंगाल कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष मानस भुइयां एवं पूरी कांग्रेसी टीम को दौड़ा–दौड़ा कर पीटा था. आज तनाव का आलम यह है कि इलाक़े के बहुत सारे लोग दूसरी जगह शरण लिए हुए हैं. हावड़ा और उत्तर 24 परगना ज़िले हिंसा की आग में लगातार जल रहे हैं. जुलाई के पहले पखवाड़े में हावड़ा के डोमजूर में माकपा समर्थित उपद्रवियों ने तृणमूल के पंचायत सदस्य तपन कुमार मंडल की हत्या कर दी. पंचायत कार्यालय पर गोलियों व बमों के ज़रिए किए गए हमले में पंचायत समिति के सह सभापति कल्याण घोष बाल–बाल बच गए और कई अन्य नेता घायल हो गए. बाद में बर्दवान के बद्रावपुर में माकपा और तृणमूल समर्थकों को तितर–बितर करने के लिए पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा. मालूम हो कि लोकसभा चुनावों तक राजनीतिक हिंसा में लगभग 66 लोग मारे गए. पश्चिम मिदनापुर में 20, मुर्शिदाबाद में 9, पूर्व मिदनापुर में 8, दक्षिण 24 परगना में 8, बर्दवान में 6, नदिया में 4, पुरुलिया में 4, उत्तर 24 परगना में 2, मालदा में 2 और हुगली, दक्षिण दिनाजपुर एवं कूचबिहार में एक–एक व्यक्ति को अपनी जान गंवानी पड़ी. विमान बोस के मुताबिक़ 242 वाम कॉडर मारे गए हैं तो ममता के मुताबिक़ 20 तृणमूली मारे गए. इसे देखते हुए मरने वालों की संख्या 66 से काफी ज़्यादा यानी चौगुनी से भी ज़्यादा बैठती है. हालांकि वामदलों के ज़्यादातर कॉडर माओवादी हिंसा के शिकार हुए हैं. इसी साल 15 मई को नानूर प्रखंड के गुजतीपाड़ा, गारपाड़ा एवं मोद्दा आदि गांवों में हुई राजनीतिक झड़पों में कम से कम 3 तृणमूल कार्यकर्ता मारे गए और 70 घर आग के हवाले कर दिए गए. इसके पहले 25 अप्रैल को कथित तौर पर माकपा कॉडरों ने तृणमूल समर्थकों के 250 घरों को फूंक दिया था. नानूर विश्वकवि रवींद्र नाथ टैगोर के शांति निकेतन से 20 किलोमीटर दूर है, पर आज यह पूरा इलाक़ा अशांति निकेतन बन गया है. अजय एवं मयुराक्षी नदियों के किनारे बसा ख़ूबसूरत नानूर प्रखंड टेराकोटा की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है, पर आज यहां की ज़मीन ख़ून के थक्कों से काली पड़ गई है. कब थमेगा यह सिलसिला, कोई नहीं बता सकता. कहीं नानूर की चिंगारी पूरे बंगाल को ही न खाक कर दे.

feedback@chauthiduniya.com

माओवादियों के ख़िलाफ़ सरकारी उन्माद से आख़िर किसका भला होगा? उन्हीं का, जो नहीं चाहते कि अमन-चैन क़ायम हो.

आज़ाद कौन है ?

आदियोग

सीपीआई (माओवादी) के प्रवक्ता कामरेड आज़ाद यानी गहरे रंग के और लंबे-दुबले चेरुकुरी राजकुमार नहीं रहे. आंध्र प्रदेश की पुलिस ने अपनी पीठ थप-थपाते हुए बताया कि उन्हें आदिलाबाद के जोगपुर जंगल में हुई मुठभेड़ में मार गिराया गया. पुलिस के मुताबिक़, मुठभेड़ सरकेपल्ली गांव इलाक़े में हुई और लगभग चार घंटे तक चली. मुठभेड़ की बताई गई जगह पर बांस के घने पेड़ों और पथरीली चट्टानों का लंबा सिलसिला है यानी बचकर ग़ायब हो जाने की पूरी सहूलियत. मुठभेड़ रात के सन्नाटे में हुई, लेकिन आसपास के ग्रामीणों को गोलियां चलने की आवाज़ नहीं सुनाई दी. मुठभेड़ में आज़ाद के साथ स्वतंत्र पत्रकार एवं पार्टी के धुर समर्थक हेमचंद्र पांडे भी मारे गए. पुलिस के मुताबिक़, उसका सामना 25-30 माओवादियों से हुआ था, जो दोनों के ढेर होते ही भाग निकले. हैरत यह कि पुलिस टुकड़ी में कोई घायल नहीं हुआ. आज़ाद पार्टी में तीसरे नंबर के नेता थे और उनके चारों ओर लगभग 70 माओवादियों का सुरक्षा घेरा रहता था. अपने इलाक़े से निकल कर वह ख़ुद निहत्थे होते थे और निहत्थे समर्थकों के भरोसे रहते थे.

मुठभेड़ की फ़र्ज़ी पुलिसिया कहानी का सच यह है कि आज़ाद का आदिलाबाद जाने का कोई कार्यक्रम नहीं था. वैसे भी इस इलाक़े से बहुत पहले माओवादियों का सफ़ाया हो चुका है और वहां उनका कोई सांगठनिक ढांचा नहीं है. नागपुर में बीती एक जुलाई को आज़ाद और हेमचंद्र सुबह साढ़े दस बजे रेल से पहुंचे थे, जहां सादी वर्दी में तैनात राज्य के स्पेशल इंटेलिजेंस ब्यूरो (एसआईबी) ने उन्हें धर दबोचा. पहले उन्हें करीमनगर ले जाने की योजना थी, लेकिन तेज़ बारिश के चलते किसी अज्ञात जगह ले जाया गया और वहां से मुठभेड़ की जगह तक. इस तरह आज़ाद और उनके साथी को उनकी ज़िंदगी से आज़ाद कर दिया गया. उनके शव के पास एक बंदूक भी बरामद दिखा दी गई. डॉ. रमन सिंह से लेकर चिदंबरम तक माओवादियों को कायर करार देते हैं कि वे घात लगाकर हमला बोलते हैं. लेकिन यह किस सभ्यता, नैतिकता और न्याय की निशानी है कि निहत्थे आदमी पर हमला किया जाए. न जाने कब से और पूरी दुनिया में इसे बहादुरी नहीं, कायरता में गिना जाता है. जिनेवा समझौता भी इसकी इजाज़त नहीं देता, जिस पर भारत ने भी दस्तख़त किए हैं.

आज़ाद की हत्या ने माओवादी उभार में आग झोंकने और फ़िलहाल युद्ध विराम की कोशिशों पर विराम लगा देने का काम किया है. माओवादी ऐलान कर चुके हैं कि इस हत्या का बदला लिया जाएगा. मतलब कि उनकी ओर से अब अधिक और बड़े हमले होंगे. दूसरी तरफ़ पुलिस और सुरक्षाबलों की कार्रवाइयां और ज़ोर पकड़ेंगी. माओवादियों से निपटने के नाम पर वर्दीधारी गांवों पर धावा बोलेंगे. बेकसूर आदिवासियों को अपनी बंदूकों का निशाना बनाएंगे और महिलाओं पर अपनी मर्दानगी का जौहर दिखाएंगे. कुल मिलाकर गृह युद्ध के हालात परवान चढ़ेंगे. हालांकि अभी से सीआरपीएफ माओवादियों के नियंत्रण वाले इलाक़ों में जाने से इंकार करने की मुद्रा में आ गई है. उसे पुलिस की हिफ़ाज़त की दरकार है. ख़बर गर्म है कि इस मुद्दे को लेकर छत्तीसगढ़ में पुलिस और सीआरपीएफ के आला अफसरों की बैठक में तीखी नोंकझोंक भी हुई. क्या पता कब सीआरपीएफ के जवानों में नौकरी छोड़ने के लिए भगदड़ मच जाए?

माओवादियों के ख़िलाफ़ सरकारी उन्माद से आख़िर किसका भला होगा? उन्हीं का, जो नहीं चाहते कि अमन-चैन क़ायम हो. कौन हैं वे लोग? उनकी शिनाख्त इस तथ्य की रोशनी में की जा सकती है कि सरकार के साथ बातचीत की ताज़ा कोशिशों में आज़ाद अहम किरदार थे. केंद्रीय गृहमंत्री पी चिदंबरम ने बातचीत की शुरुआत के लिए इस जुलाई माह की तीन तारीख़ें तय की थीं, जिस पर माओवादियों को तीन जुलाई तक अपनी प्रतिक्रिया देनी थी. आज़ाद इसी सिलसिले में पार्टी नेताओं से मिलने नागपुर गए थे.

ऑपरेशन ग्रीन हंट की धमक के साथ ही कई संगठनों और व्यक्तियों की ओर से तमाम कोशिशें हुईं कि दोनों पक्ष बातचीत की मेज़ पर पहुंचें, लेकिन सरकारी रवैये ने आख़िरकार उन कोशिशों की हवा निकाल दी. ताज़ा पहल स्वामी अग्निवेश ने की थी. इस सिलसिले में माओवादियों से बातचीत के लिए सरकार की शर्तों को रखते हुए 11 मई को पी चिदंबरम ने उन्हें पत्र लिखा था. कहने को यह पत्र गोपनीय था, लेकिन ख़ुद गृह मंत्रालय ने इसे लीक करा दिया, ताकि देश को बताया जा सके कि मसले के हल के लिए सरकार किस क़दर संजीदा है. माओवादियों की ओर से आज़ाद ने 31 मई को स्वामी अग्निवेश को ख़त लिख कर सरकार की शर्तों पर अपना पक्ष रखा था. इसे अचरज कहें या सरकारी दबाव का नतीज़ा कि आज़ाद का यह खुला ख़त मीडिया की सुर्ख़ियां नहीं बन सका. 26 जून को आज़ाद के नाम लिखा गया स्वामी अग्निवेश का भी ख़त गोपनीय था और गोपनीय बना रहा. इसे कहते हैं ईमानदारी का तक़ाज़ा.

ख़ासकर पिछले साल से माओवादियों के साथ बातचीत के लिए कोशिशों का दौर चल रहा है. हमेशा की तरह इस बार भी चिदंबरम ने बातचीत के लिए 72 घंटे का फ़ार्मूला पेश किया था. पिछली बार किशन जी ने इसका जवाब 72 दिन के प्रस्तावित युद्ध विराम से देकर चिदंबरम की नीयत की बखिया उधेड़ देने का काम किया था. इस पर चिदंबरम ने यह तकनीकी पेंच भिड़ा कर इस प्रस्ताव को पटखनी देने की नाकाम कोशिश की कि इस बात का क्या सबूत कि किशन जी का प्रस्ताव उनकी पार्टी की ओर से आया है, उसे तो पोलित ब्यूरो की ओर से आना चाहिए था. जवाब पर जवाब का दौर गर्म हुआ और यह सिलसिला आख़िरकार ठप्प हो गया. पुलिस और सुरक्षाबलों की घेराबंदी बढ़ी और माओवादियों के सफ़ाए के नाम पर हत्या, बलात्कार, आगजनी, लूट से लेकर बेगुनाहों को फ़र्ज़ी मामलों में फंसाने का मोर्चा अधिक व्यापक और घना होता गया. बदले में माओवादी हमलों में भी इज़ाफ़ा हुआ. अमन और इंसाफ़ के पक्षधरों ने उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा. इसके बदले उन्हें माओवादियों के समर्थक के तमगे से भी नवाज़ा गया. इस बार आज़ाद सामने थे और उन्होंने भी 72 घंटे के फ़ार्मूले को बकवास करार दिया. किशन जी तमाम घेराबंदी तोड़ते हुए सरकार के हाथ नहीं लगे, लेकिन आज़ाद उनकी तरह ख़ुशक़िस्मत नहीं निकले. पकड़े गए और शहीद कर दिए गए.

बीती चार जुलाई को हैदराबाद के पुंजगुट्टा श्मशान स्थल पर क्रांतिकारी गीतों और नारों के साथ आज़ाद को आख़िरी सलामी दी गई. हालांकि आंध्र प्रदेश सरकार ने उनके सिर पर ज़िंदा या मुर्दा 12 लाख रुपये का ईनाम रखा था, लेकिन ख़ुफ़िया एजेंसियों की आंख में चढ़ जाने के ख़तरों को धता बताते हुए अंतिम संस्कार में सैकड़ों की भीड़ उमड़ी और उसने बताया कि आज़ाद कितने लोकप्रिय थे. इसमें उनके दोस्तों, नाते-रिश्तेदारों और समर्थकों के अलावा समर्पण कर चुके माओवादी भी शामिल थे. आज़ाद का अंतिम संस्कार इस बात का सबूत था कि भले ही राज्य से माओवादियों का लगभग सफ़ाया किया जा चुका है, लेकिन उनके आंदोलन को बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों, वकीलों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के बड़े हिस्से का समर्थन हासिल है. इसका मतलब यह भी नहीं कि वे माओवादी हिंसा का समर्थन करते हैं, लेकिन उनके मक़सद का समर्थन ज़रूर करते हैं. क्रांतिकारी गायक गदर ने गीत गाकर दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि दी. कवि वरवर राव के मुताबिक़, आम जनता की पूर्ण मुक्ति और साम्राज्यवादी ताक़तों का पतन आज़ाद की ज़िंदगी का मक़सद था और उसके लिए वह कुर्बान हो गए. आज़ाद हमेशा कहते थे कि माओवादियों ने उस परियोजना का कभी विरोध नहीं किया, जिससे ग़रीबों का भला होने वाला हो. उन्होंने सड़कों के निर्माण में अगर रुकावट डाली तो इसलिए कि बड़ी कंपनियों को आदिवासी इलाक़ों में प्राकृतिक संसाधनों की लूट के लिए आने से रोका जा सके. अंतिम संस्कार में सीपीआई (एमएल)-जनशक्ति के पूर्व नेता अमर भी शामिल थे. इन तीनों शख्सियतों ने 2004 में राज्य सरकार के साथ हुई शांति वार्ताओं में मध्यस्थ की भूमिका अदा की थी. पीयूसीएल के अध्यक्ष के जी कन्नाबिरन ने उन्हें बहादुर योद्धा के तौर पर याद किया. क्या क्रूर विरोधाभास है कि श्मशान स्थल से कुल आधा किलोमीटर दूर मुख्यमंत्री आवास पर उसी दिन उनकी सालगिरह का जश्न चल रहा था.

शेक्सपियर ने ग़लत नहीं कहा था कि ज़रूरत पड़ने पर शैतान भी पवित्र मंत्रों का जाप करने लगते हैं. शांति के सरकारी अलाप पर इससे सटीक टिप्पणी और क्या हो सकती है, जिसके पीछे अशांति को क़ायम रखने और माओवादियों के समूल नाश के इरादों का नगाड़ा बज रहा है. जबकि शांति की बहाली असंतोष और प्रतिरोध की आवाज़ों के दमन से नहीं की जा सकती. शांति का सिक्का न्याय के पहिए से चलता है, नसीहतों और धमकियों से नहीं. सरकार कॉरपोरेट समूहों के आगे बिछने से तौबा करे और उनके साथ हुए करारनामों को रद्द करे. आदिवासियों एवं ग़रीब-वंचित समुदायों की ज़मीन हड़पने और उन्हें विस्थापन के अंधे कुएं में ढकेलने से बाज आए. शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं की सेहत सुधारे और सुरक्षाबलों को वापस बुलाए. वह सीपीआई (माओवादी) को देश के लिए ख़तरा समझने की अपनी भूल सुधारे और उस पर लगी पाबंदी हटाए. इतना हुआ कि समझिए, शांति का चौड़ा रास्ता खुल गया.

अगर दिल और दिमाग़ दुरुस्त है तो समझा जा सकता है कि बिजली, सड़क, टीवी एवं मोबाइल जैसी सुविधाओं की पहुंच या जीडीपी में बढ़त किस काम की, अगर ज़िंदा रहने का सवाल सबसे बड़ा हो और बचाव या राहत के तमाम दरवाज़े बंद हों. ऐसे में हिंसा बनाम अहिंसा की बहस का क्या मोल? आख़िर अमन बहाली के लिए बातचीत करने से मुंह कौन चुरा रहा है और क्यों?

आज़ाद

आज़ाद ज़मींदार ख़ानदान के थे, लेकिन उन्होंने दबे-कुचले लोगों के हक़ में लड़ने का रास्ता चुना. लोकतांत्रिक अधिकार सुरक्षा संगठन के महासचिव सी भास्कर राव पुरानी यादें ताज़ा करते हुए कहते हैं, 1979 की बात है, जब आंध्र विश्वविद्यालय के दो शोधार्थियों की बस से कुचल कर मौत हुई थी. तब आज़ाद ने बस सुविधा को सरकारी क्षेत्र में लाए जाने के लिए ज़ोरदार आंदोलन छेड़ा था और अपनी इस मांग को मनवा कर ही दम लिया. राजनीति में आज़ाद का प्रवेश 1973 में छात्र नेता के तौर पर हुआ था. केमिकल इंजीनियरिंग में एम टेक करने के दौरान उन्हें रेडिकल स्टूडेंट्स यूनियन का राज्य अध्यक्ष चुना गया था. बढ़ती लोकप्रियता के चलते वह राज्य सरकार की आंख में चुभने लगे और इसी कारण उन्हें 1980 में भूमिगत होना पड़ा. जल्द ही वह गिरफ़्तार कर लिए गए और 1983 में रिहा हुए. इसके बाद दोबारा भूमिगत हो गए और कोई 27 साल तक पुलिस की पकड़ से आज़ाद रहे. इंजीनियरिंग कॉलेज के उनके सहपाठी बताते हैं कि आज़ाद अक्सर कहते थे कि बंदूक़ और कलम से बड़ा ताक़तवर व्यक्ति होता है, जो समाज में बदलाव लाता है. 55 वर्षीय आज़ाद बेहतरीन वक्ता और संगठनकर्ता थे. स्थितियों पर तीखी पकड़ रखते थे और अकाट्य तर्कों के मालिक थे. पार्टी के प्रकाशनों और कार्यक्रमों के लिए लगातार लिखते रहते थे. उनके अंग्रेजी ज्ञान का सभी लोहा मानते थे. ख़ासकर विदेशी मीडिया से मुख़ातिब होने की जिम्मेदारी उन्हीं पर थी.

हेमचंद्र

तीस वर्षीय हेमचंद्र पांडे उत्तराखंड के पिथौरागढ़ शहर के क़रीब स्थित एक गांव के वाशिंदे थे. नैनीताल विश्वविद्यालय से उन्होंने इतिहास से एमए किया था. आज़ाद की तरह राजनीति में उनका प्रवेश भी छात्र राजनीति से हुआ था. बाद में वह पार्टी से जुड़े. अल्मोड़ा के किसानों को संगठित करने और उनकी समस्याओं को सतह पर लाने में उनकी अग्रणी भूमिका थी. वह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ताज़ा सवालों और मुद्दों पर छद्म नामों से लिखा करते थे.

feedback@chauthiduniya.com

सूबे के पर्यावरण विशेषज्ञ सरकार द्वारा बांध बनाने एवं पावर प्रोजेक्ट के बहाने नदियों के जल की सौदेबाज़ी से ख़फ़ा हैं.

जल, जंगल और ज़मीन बचाने की मुहिम

राजकुमार शर्मा

राज्य के 250 स्वयंसेवी संगठनों ने एक नई जल नीति बनाकर निशंक सरकार को उसका मसौदा सौंप दिया है. संगठनों का कहना है कि अगर सरकार पहाड़ के पानी को बचाना चाहती है तो उसे जल, जंगल एवं ज़मीन के संदर्भ में जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप नीति बनानी और लागू करनी होगी. मालूम हो कि राज्य गठन के साथ ही जल नीति घोषित करने की मांग उठने लगी थी. यह उम्मीद की गई थी कि वर्ष 2002 तक सरकार अन्य कार्यों के साथ ही जल नीति भी तैयार कर लेगी, लेकिन आज दस वर्ष बीत जाने के बावजूद सरकार जल नीति बनाने और उसे मंजूरी देने से लगातार कतरा रही है. राज्य की अपनी जल नीति न होने के कारण सरकार हाइड्रो प्रोजेक्ट के बहाने नदियों का मनमाने तरीक़े से दोहन कर रही है. केंद्र सरकार ने 2002 में ही राष्ट्रीय जल नीति लागू कर देश के विभिन्न राज्यों से अगले दो वर्ष के अंदर अपनी जल नीति तैयार करने के लिए कहा था, जिस पर उत्तराखंड ने आज तक अमल नहीं किया. निशंक सरकार पर हाइड्रो पावर के वितरण में गंभीर अनियमितता बरतने एवं भ्रष्टाचार का आरोप पहले से ही लगा हुआ है.

राजनीतिक गलियारे में चर्चा है कि यह सरकार आए दिन अनाड़ियों को पावर प्रोजेक्ट लगाने का काम सौंप रही है, जिससे राज्य में छोटी–बड़ी नदियां बंधक बनती जा रही हैं. जोशीमठ के आगे विष्णु प्रयाग में जेपी समूह द्वारा पावर प्रोजेक्ट लगाने से पूरे इलाक़े में पहाड़ धंसने और पानी का संकट पैदा हो रहा है. यही स्थिति कमोबेश पूरे पहाड़ में है. इसलिए जनता अब एक स्वर में मांग कर रही है कि उसे हाइड्रो पावर नहीं, जल नीति चाहिए. यह बात सरकार भी समझती है कि हिमालयी राज्यों की आजीविका जल, जंगल और ज़मीन पर ही निर्भर हैं. पर्यावरण विशेषज्ञों का मानना है कि यदि सरकार इस दिशा में तत्परता से काम करे तो जलवायु परिवर्तन एवं जल संकट जैसी चुनौतियों से निपटा जा सकता है, लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि सरकार पूरे विवेक और ईमानदारी के साथ राज्य में जल नीति तैयार करे.

राजनीतिक गलियारे में चर्चा है कि यह सरकार आएदिन अनाड़ियों को पावर प्रोजेक्ट लगाने का काम सौंप रही है, जिससे राज्य में छोटी-बड़ी नदियां बंधक बनती जा रही हैं. जोशीमठ के आगे विष्णु प्रयाग में जेपी समूह द्वारा पावर प्रोजेक्ट लगाने से पूरे इलाक़े में पहाड़ धंसने और पानी का संकट पैदा हो रहा है.

सूबे के पर्यावरण विशेषज्ञ सरकार द्वारा बांध बनाने एवं पावर प्रोजेक्ट के बहाने नदियों के जल की सौदेबाज़ी से ख़फ़ा हैं. उनका मानना है कि इन हिमालयी नदियों के रास्ते बदल कर इन्हें सुरंगों से गुज़ारना इनके प्रति जनास्था एवं महत्व के साथ खिलवाड़ करने जैसा है. जानकारों का मानना है कि सरकार गंगा जैसी नदी को केवल अपनी आमदनी के साधन के रूप में देख रही है. उसे बचाने एवं पावन बनाए रखने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किया जा रहा है.

पर्यावरणविदों का मानना है कि करोड़ों लोगों की आस्था की प्रतीक गंगा के नाम पर सूबे की सरकार केवल राजनीति कर रही है. बीते जमाने की अभिनेत्री हेमामालिनी को गंगा का ब्रांड एंबेसडर बनाना उसकी अज्ञानता का प्रमाण है. गंगा को तो स्वयं विश्व भर के लोग नमन करते हैं. पर्यावरण विशेषज्ञों गंगा से प्रार्थना की है कि वह निशंक सरकार को सद्बुद्धि दें. स्वयंसेवी संगठनों की मुहिम का मकसद नदियों के साथ–साथ उनके मूलस्रोत हिमालय को भी बचाना है, ताकि राजनेता अपनी जागीर समझ कर इसकी सौदेबाज़ी न कर सकें.

केंद्रीय मंत्री हरीश रावत ने निशंक सरकार के स्पर्श गंगा कार्यक्रम को राज्य की जनता के साथ धोखा बताते हुए कहा कि यह देश की पहली सरकार है, जो गंगा के साथ खिलवाड़ कर रही है. उन्होंने कहा कि राज्य सरकार ने जनता की गाढ़ी कमाई के 18 लाख रुपये नाच–गाने में ख़र्च कर दिए. कांग्रेस इसे मुद्दा बनाने के मूड में है. पार्टी का कहना है कि गंगा के नाम पर राज्य सरकार की किसी भी ग़लत नीति को अब जनता बर्दाश्त नहीं करेगी. पूर्व केंद्रीय मंत्री स्वामी चिन्मयानंद ने कहा कि गंगा के साथ धोखा करने की छूट नहीं दी जाएगी. गंगा के सवाल पर पूरा संत समाज एक है. यह समझते हुए ही सरकार को कोई निर्णय लेना चाहिए.

feedback@chauthiduniya.com

गोमुख से गंगासागर तक पदयात्रा पर एक संन्यासी

यदि यह पदयात्रा किसी नेता या अभिनेता की होती अथवा कोई रथयात्रा हो रही होती तो मीडिया इसकी पल–पल की जानकारी दे रहा होता, किंतु यह यात्रा एक संन्यासी कर रहा है, लिहाज़ा इसकी कहीं कोई चर्चा नहीं हो रही. गोमुख से गंगासागर तक किनारे–किनारे पूरे ढाई हज़ार किलोमीटर लंबे मार्ग पर सर्दी, लू के थपेड़ों और बरसात के बीच इस संन्यासी की पदयात्रा गंगा की निर्मलता के लिए हो रही है. वह भी ऐसे मार्ग पर, जो कभी पारंपरिक यात्रापथ नहीं रहा. कई स्थानों पर तो दूर–दूर तक सड़क ही नहीं है. उत्तर भारत की जीवन रेखा मानी जाने वाली गंगा नदी इन दिनों दोहरी मार झेल रही है. एक ओर वह बांधों के कारण अपना अस्तित्व खोने की कगार पर है, बाक़ी कसर आधुनिक रहन–सहन, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के दबाव ने पूरी कर दी है. बांधने और कूड़ा–कचरा एवं ज़हरीला पानी मिलाने से गंगा अपनी पवित्रता खो चुकी है. इसके जल का प्रत्यक्ष–परोक्ष उपयोग नदी किनारे बसने वाली करोड़ों की आबादी के लिए गंभीर स्वास्थ्य समस्या का जनक बन चुका है. तीन दशक पहले जिस गंगा का जल कानपुर, इलाहाबाद एवं बनारस में साफ था, आज वह गटर के पानी जैसा हो चला है. हरिद्वार के बाद इसका अमृत समान जल अशुद्ध होता चला जाता है और यह मात्र कहने भर के लिए नदी रह जाती है.

गंगा की ऐसी हालत संवेदनशील लोगों को सदा विचलित करती रही है. विगत वर्ष आईआईटी के प्रोफेसर जी डी अग्रवाल ने पहले उत्तरकाशी एवं बाद में दिल्ली में लंबे समय तक अनशन किया तो सरकार ने गंगा पर बांध बनाने के गंभीर मुद्दे पर मात्र दिखाने के लिए कुछ परियोजनाओं को स्थगित कर दिया. संवेदनशील न होते तो 75 साल के इस बुज़ुर्ग वैज्ञानिक को क्या पड़ी थी? घर में आराम से रह सकते थे. यद्यपि उनके अनशन को समाप्त कराने के लिए ठेकेदारों एवं पूंजीपतियों की लॉबी ने पूरा जोर लगा दिया था, जिनके लिए विकास का मतलब महज़ पैसा कमाना है. ठीक यही टिहरी बांध बनने से पहले हुआ था, किंतु आज इस बांध की विभीषिका को लाखों लोग झेल रहे हैं. पहले यही कंपनियां एवं इनके समर्थक टिहरी बांध को लेकर तरह–तरह के सपने दिखाया करते थे, किंतु अब जबकि सारे सपने चूर–चूर हो गए हैं, वे दूसरी जगह जाकर विकास का राग अलाप रहे हैं. अग्रवाल का अनशन गंगा की धारा को रोके जाने के विरुद्ध था, आचार्य नीरज की गोमुख से लेकर गंगा सागर तक की लंबी पदयात्रा गंगा की निर्मलता को लेकर है. वह प्रवचन करने वाले बाबाओं से अलग हैं, जो तमाम सुख–सुविधाओं के बीच रहकर जनता को आध्यात्म का पाठ पढ़ाते हैं.

रसायन विज्ञान में एमएससी एवं सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता से संन्यासी बने आचार्य नीरज एक बेहद कठिन पदयात्रा पर हैं. उनके दो मक़सद हैं. पहला यह कि अपनी सामर्थ्य के मुताबिक़ गंगा से सटे प्रत्येक नगर–गांव तक गंगा की निर्मलता का संदेश देना और दूसरा यह कि वास्तविक स्थिति का आकलन करने के बाद गंगा की स्वच्छता को लेकर सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर करने का आधार तय करना. उनके अनुसार, नदियों के प्रति सरकार एवं जनता को जवाबदेह बनाया जा सकता है और न्यायालय ही यह कर सकता है. वह कहते हैं कि हम मेट्रो रेल से सबक ले सकते हैं. जहां भी गंदगी करने के लिए कठोर क़ानून हैं, वहां कोई गंदा नहीं करता. क्या ऐसा ही कोई क़ानून गंगा को प्रदूषित करने वालों के लिए नहीं बन सकता?

350 किलोमीटर का पहला चरण गोमुख से हरिद्वार के बीच पूरा करने के बाद यात्रा का दूसरा चरण उत्तर प्रदेश में जारी है. यह चरण बिजनौर बैराज, ब्रजघाट, गढ़मुक्तेश्वर, अनूपशहर से नरौरा, फर्रुखाबाद, कन्नौज, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद एवं वाराणसी होते हुए बलिया तक 1100 किलोमीटर का है. पदयात्रा का तीसरा चरण बिहार में 6 अगस्त से शुरू होगा. छपरा, हाजीपुर, पटना, मुंगेर, खगड़िया एवं भागलपुर होते हुए यह पदयात्रा बंगाल के मुर्शिदाबाद ज़िले में प्रवेश करेगी. सितंबर माह में आचार्य नीरज बंगाल के नगरों से गुज़रेंगे. यात्रा का समापन 2 अक्टूबर को गंगासागर में होगा.

आचार्य नीरज के अनुसार, गंगा को साफ करने के लिए चल रहे मौजूदा कार्यक्रम अस्थायी एवं तात्कालिक हैं, जिनमें कहीं भी समर्पण और जवाबदेही नहीं है. गंगा जैसी नदी को इस तरह साफ नहीं किया जा सकता. आज यदि लोग ऋषि–मुनियों की तरह संवेदनशील होते तो नदी गंदी ही न होती. औद्योगीकरण एवं आधुनिक विकास के बीच हम भूल गए कि गंगा करोड़ों लोगों के जीवन का आधार है, लेकिन उसे प्रदूषित होने से रोकने के लिए कोई इंतज़ाम नहीं है.

अपने उद्गम स्थल से ही गंगा गंदी होने लगती है. कहीं उसमें घरेलू कचरा और सीवर मिलाया जा रहा है तो कहीं बड़े–बड़े उद्योगों का कचरा एवं ज़हरीला जल. पूजा–पाठ कराने वाले भी नदियों को गंदा करने में पीछे नहीं हैं. सैकड़ों क्विंटल फूल और मुंडन–पिंडदान के लिए काटे गए बाल भी गंगा में बहाए जा रहे हैं. शवों के दाह से भी गंगाजल प्रदूषित हो रहा है. विकास एवं भौतिकवाद के अंधानुकरण के बाद से ही गंगा में गंदगी की मात्रा बढ़ती चली गई और उसके जल के औषधीय गुण समाप्त हो गए. आज कुछ स्थानों पर गंगा में नहाने का वैज्ञानिक आधार नहीं रहा. उसमें मिले कैडमियम, क्रोमियम एवं पारे सहित अनेक ख़तरनाक रसायनों का असर गंगा किनारे बसे नगरों की आबादी के स्वास्थ्य पर हो रहा है, जहां उसके जल का उपयोग पीने, सिंचाई एवं नहाने के काम में होता है. विषाक्त जल का प्रभाव सिंचित फ़सलों एवं सब्जियों पर भी हो रहा है. नदी में मछलियां मर रही हैं, डाल्फिन संकटग्रस्त है.

गंगा भारत की धरोहर है, इसलिए इसे अलग–अलग राज्यों की नदी के रूप में न देखकर भारत की नदी के रूप में देखना होगा. हमारे नगर में यह नदी पवित्र है और आगे भी पवित्र रहे जैसी सोच देश की सारी जीवनदायिनी नदियों को उनका पुराना प्राकृतिक एवं पवित्र रूप दे सकती है. गंगा यदि साफ होगी तो इससे सुख, समृद्धि एवं वैभव का मार्ग प्रशस्त होगा. अभियान के प्रवक्ता सुशील सीतापुरी कहते हैं कि गंगा किनारे नाव से तो अभियान चले हैं, किंतु पदयात्रा एक अनोखा अभियान है. अभियान के तहत बनारस एवं पटना में गोष्ठियां आयोजित करने की योजना है. आचार्य नीरज बनारस में 24 जुलाई एवं पटना में 20 अगस्त के आसपास पहुंचेंगे. वह जब गोमुख से चले थे तो उनके ज़्यादातर साथी कठिन यात्रा के कारण बीमार हो गए. अब तक की पदयात्रा उन्होंने अकेले ही तय की है. लोग उनके साथ कुछ दूरी तक चलते हैं और थकने पर यात्रा से अलग हो जाते हैं, लेकिन नीरज की यात्रा सर्दी, गर्मी और बरसात के बीच निर्बाध रूप से जारी है. एक दिन में वह बीस किलोमीटर चलते हैं और नदी किनारे बने आश्रमों में रहते हैं.

एल मोहन कोठियाल
feedback@chauthiduniya.com

पूर्ण स्वच्छता अभियान को मनरेगा के साथ जोड़े जाने से एक टॉयलेट के निर्माण की कुल लागत क़रीब 6500 रुपये होगी.

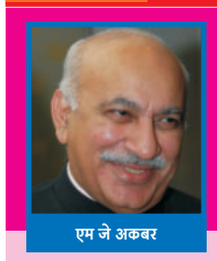

एम जे अकबर

उमर अब्दुल्ला कश्मीर को खो रहे हैं

एक वैचारिक युद्ध जीतने में कितना वक़्त लगता है? उच्च वर्ग के शासकों की सेनाओं के बीच एक पारंपरिक मुक़ाबला हमेशा से होता आया है. और यह तब तक चलता रह सकता है, जब तक सैनिकों के मन में यह विचार ज़िंदा रहे कि यह लड़ाई वे अपने आका के हित में लड़ रहे हैं. वैचारिक युद्ध विभिन्न सिद्धांतों और न्याय की परस्पर विरोधाभासी परिभाषाओं के बीच सीमित कर दिया गया है. वैचारिक युद्ध पहले दिमाग़ में शुरू होता है, इसलिए यह कहना कठिन है कि यह कब शुरू हुआ, लेकिन इसके बारे में हमें तब पता चलता है, जब यह दिमाग़ से निकल कर सड़कों पर उतरता है और फिर ख़त्म हो जाता है.

हम उमर अब्दुल्ला के वैचारिक युद्ध के लिए एक नियत दिन तय कर सकते हैं, जिससे पता चल सके कि वह अपनी वर्तमान समस्याओं को कैसे सुलझाते हैं. 11 जून, 1939 को जम्मू-कश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस, जिसकी नींव 1932 में रखी गई थी और जिसका नेतृत्व उमर के दादा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला कर रहे थे, ने पार्टी का नाम बदल कर नेशनल कांफ्रेंस रखा. 179 प्रतिनिधियों ने रात भर विचार-विमर्श किया. अगली सुबह इस प्रस्ताव के ख़िलाफ़ केवल 3 वोट डाले गए. यह एक विशिष्ट घटना थी. केवल इसकी आंतरिक मान्यताओं को लेकर नहीं, बल्कि इसलिए कि उपमहाद्वीप के शेष भाग में यह मुस्लिम राजनीतिक विचारधारा के ख़िलाफ़ था. देश की प्रमुख राजनीतिक पार्टी मुस्लिम लीग भी गांधी, मौलाना आज़ाद एवं नेहरू की धर्मनिरपेक्ष विचारधारा का विरोध करती थी. 26 मार्च, 1938 को मुस्लिम कांफ्रेंस के छठे अधिवेशन में शेख अब्दुल्ला ने कहा कि हमें सांप्रदायिकता को ख़त्म करना होगा और इसके लिए अपनी राजनीतिक समस्याओं को मुस्लिम या ग़ैर मुस्लिम नज़रिए से देखना बंद करना होगा. 1939 में अनंतनाग में नेशनल कांफ्रेंस ने विश्व युद्ध को लेकर गांधी की नीतियों का समर्थन किया था. कुशासन के लिए ज़िम्मेदार लोगों के लिए इतिहास सबसे आसान और सुरक्षित बहाना है. आज 71 साल के बाद क्या कर्फ्यू यहां एक सिद्धांत बन चुका है?

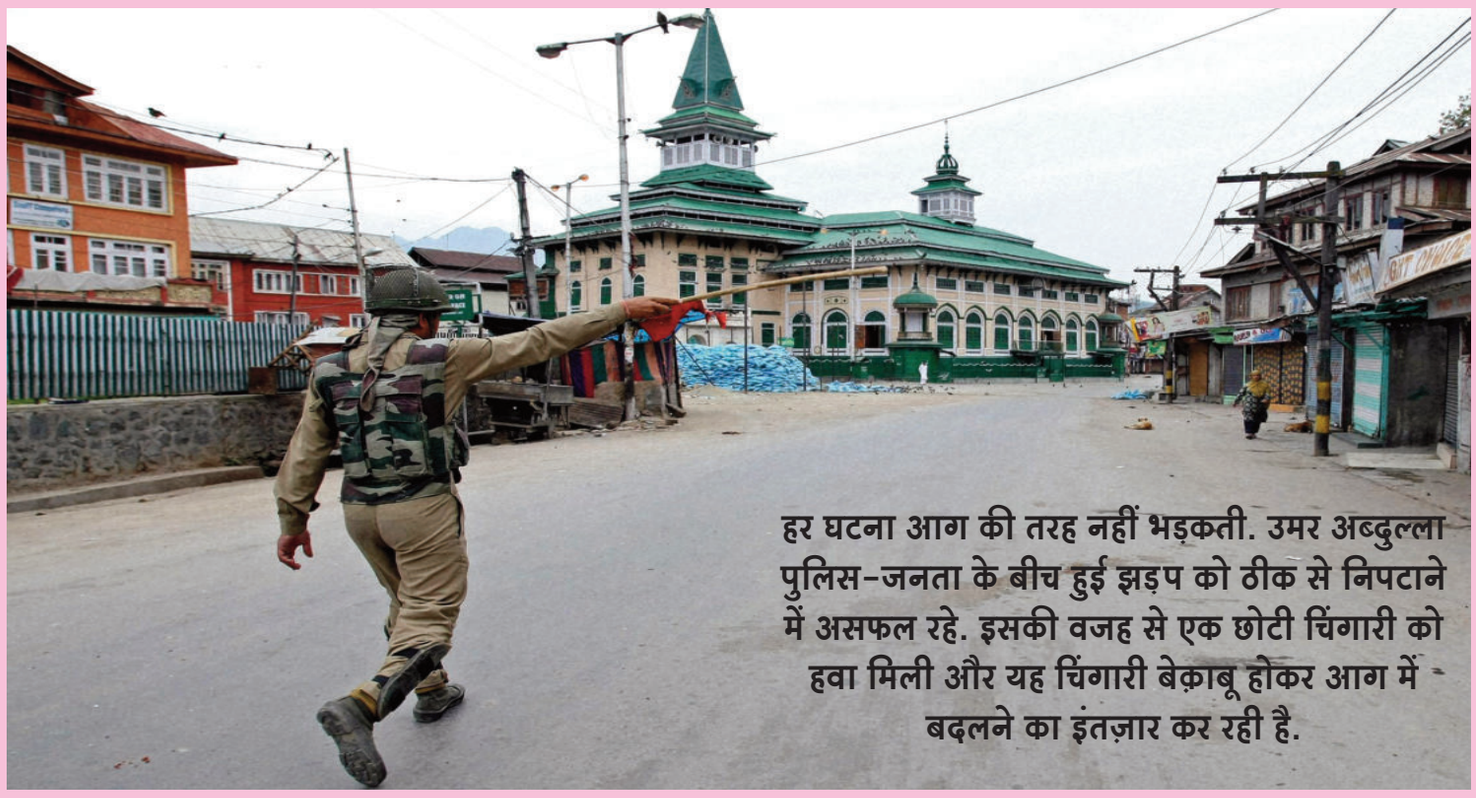

हर घटना आग की तरह नहीं भड़कती. उमर अब्दुल्ला पुलिस-जनता के बीच हुई झड़प को ठीक से निपटाने में असफल रहे. इसकी वजह से एक छोटी चिंगारी को हवा मिली और यह चिंगारी बेक़ाबू होकर आग में बदलने का इंतज़ार कर रही है.

अगर 11 जून जैसी बहस आज आयोजित हो तो कौन हिस्सा लेगा, उमर के दादा के साथ वे 176 प्रतिनिधि या वे तीन लोग, जिन्होंने शेख अब्दुल्ला के प्रस्ताव के विरोध में वोट डाला था? चूंकि बहानेबाज़ों के लिए समय व्यतीत करने के लिए अतीत का समय सबसे माकूल होता है, इसलिए इतिहास की व्याख्या के वक़्त ख़ास दिनों का जिक्र हमेशा किया जाना चाहिए, लेकिन इतिहास 18 महीने का एक बच्चा भी हो सकता है और 71 साल का एक बूढ़ा भी. 2008 के जाड़े और 2009 की गर्मी में नेशनल कांफ्रेंस एवं कांग्रेस के 1939 के समझौते ने श्रीनगर और घाटी में बड़े पैमाने पर लोगों का समर्थन हासिल किया. आप कर्फ्यू में मतदान नहीं करा सकते.

हर घटना आग की तरह नहीं भड़कती. उमर अब्दुल्ला पुलिस-जनता के बीच हुई झड़प को ठीक से निपटाने में असफल रहे. इसकी वजह से एक छोटी चिंगारी को हवा मिली और यह चिंगारी बेकाबू होकर आग में बदलने का इंतज़ार कर रही है. यह सब कुछ मौलिक दोष की वजह से भी हो सकता है. राज्य की जनता ने उमर अब्दुल्ला को मुख्यमंत्री के रूप में नहीं चुना. जनता ने उनके पिता फारुख़ अब्दुल्ला को वोट दिया, जिन्होंने अपने प्रचार में बार-बार कहा कि मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार वह ख़ुद हैं. उमर सिर्फ़ एक आदमी के वोट से गद्दी पर बैठाए गए हैं और वह वोट है राहुल गांधी का. और यह सब कुछ कश्मीरी युवाओं का रोल मॉडल बनने और राहुल गांधी की छवि बनाने के लिए किया गया, लेकिन कश्मीर के सबसे कम उम्र के मुख्यमंत्री ने कश्मीर के युवाओं का विश्वास खो दिया.

आख़िर फारुख़ और उमर अब्दुल्ला के बीच फ़र्क़ क्या है? सामाजिक-राजनीतिक डीएनए. फारुख ज़मीनी स्तर पर एक कश्मीरी हैं. उमर अंग्रेजी भाषी भारत की नई पीढ़ी की संतान हैं. उमर का घर तो कश्मीर में है, लेकिन रहते दिल्ली में हैं. फारुख़ जनता के बीच कश्मीरी में बात करते हैं, उर्दू में गीत भी गाते हैं. उमर अंग्रेजी बोलते हैं और हफ्ते का अधिकांश समय दिल्ली में गुज़ारते हैं. शायद यह चार पीढ़ी से चले आ रहे बहु सांस्कृतिक एथनिक भारत का एक लक्षण है, जहां एक नई पीढ़ी धीरे-धीरे अपने वंशवृक्ष की जड़ को अतीत का हिस्सा बनाना शुरू कर देती है. उमर ईमानदार हैं और अपने राज्य का प्रतिनिधित्व ईमानदारी से करते हैं, लेकिन अपने लोगों से संप्रेषण (बातचीत) नहीं कर सकते. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि घाटी उमर अब्दुल्ला के साथ संपर्क नहीं कर सकती है. दरअसल, पिता और पुत्र दोनों ही ग़लत कर रहे हैं.

बदलाव का अवसर बहुत लंबे समय तक नहीं मिलने वाला. अगर जल्द सुधार नहीं किया गया तो उमर को श्रीनगर के सचिवालय को अब्दुल्लाओं के लिए निवास स्थान बनाना पड़ सकता है. उनके पास अभी भी समय है, लेकिन उतना नहीं, जितना उनके दोस्त राहुल गांधी उन्हें देना चाहते हैं. विडंबना यह है कि पाकिस्तान कश्मीरी युवाओं के लिए रोल मॉडल नहीं हो सकता है. हमारे उपमहाद्वीप ने विश्वास और सत्ता के नाम पर देश और स्थानीय नागरिकों, पार्टी और विद्रोहियों द्वारा हज़ारों सालों से हिंसा को ही झेला है. सबसे निर्दयी तानाशाह भी लाहौर के दाता गंजबख्श हजवेरी, जो 10वीं शताब्दी में पर्शिया से आए थे, की दरगाह पर छाई पवित्र शांति को भंग करने का साहस नहीं करता. लाहौर की पहचान भी दाता साहिब दरगाह से है, जिसके अस्तित्व पर तुर्क-अफगान, मुगल, सिख, राजपूत और ब्रिटिश शासन के दौरान भी कोई संकट नहीं आया. लेकिन मुस्लिम आतंकवादियों, जिन्हें हिंसक संप्रदायवाद द्वारा बढ़ावा मिलता है, ने उस सीमा रेखा को भी पार कर लिया और दाता साहिब की दरगाह को विस्फोट में उड़ा दिया. इस तरह का दुष्कर्म किसी कश्मीरी की कल्पना के बाहर होगा.

आख़िर क्यों उमर अब्दुल्ला वह खो रहे हैं, जिसे पाकिस्तान हासिल नहीं कर सकता?

feedback@chauthiduniya.com

पूर्ण स्वच्छता अभियान और मनरेगा

डॉ. सौमित्र मोहन

मनरेगा की उपयोगिता और इसके उद्देश्यों को लेकर कोई संदेह नहीं. यह भी सच्चाई है कि इसमें ग्रामीण भारत की तस्वीर बदलने की संभावनाएं मौजूद हैं, लेकिन अब तक का अनुभव यही बताता है कि इसके क्रियान्वयन में सुधार की ज़रूरत है. यदि इसे पूर्ण स्वच्छता अभियान जैसी व्यक्तिगत लाभ योजनाओं से जोड़ दिया जाए तो दोनों का बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है. साथ ही मनरेगा को लेकर नज़रिए में भी बदलाव की ज़रूरत है. सरकारी धन के ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल के बजाय जोर इस बात पर होना चाहिए कि बेरोज़गारों के लिए रोज़गार के अधिकतम अवसर पैदा किए जा सकें.

पूर्ण स्वच्छता अभियान (टोटल सैनिटेशन कैंपेन) सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना है, लेकिन देश के अधिकांश हिस्सों में इसकी हालत ठीक नहीं है. जिन इलाक़ों में सैनिटरी टॉयलेट का निर्माण हुआ भी है, वहां भी लोग इसका इस्तेमाल नहीं करते. लाभार्थियों का कहना है कि निर्मित टॉयलेट की गुणवत्ता अच्छी नहीं है. पुराने मॉडल में पानी की ज़्यादा ज़रूरत थी, जिससे कम पानी वाले इलाक़ों में इसके क्रियान्वयन में समस्याएं आती थीं. लेकिन नए मॉडल में कंक्रीट के बजाय सिरेमिक टॉयलेट का प्रावधान है, जिससे पानी के कम इस्तेमाल की ज़रूरत होगी. मनरेगा के अंतर्गत व्यक्तिगत लाभ योजनाओं का इस्तेमाल पहले भी किया गया है. कई लोगों की राय है कि पूर्ण स्वच्छता अभियान को इसके साथ जोड़ दिए जाने से दोनों को ही फ़ायदा होगा. मनरेगा के तहत व्यक्तिगत लाभ योजनाओं के लिए अधिकतम डेढ़ लाख रुपये तक ख़र्च करने की अनुमति है. यदि दोनों योजनाओं में थोड़ा-बहुत फेरबदल कर इन्हें मिला दिया जाए तो पूर्ण स्वच्छता अभियान के क्रियान्वयन में काफी सुधार हो सकता है. सरकार की यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य और स्वच्छता सुनिश्चित करने के लिहाज़ से बेहद महत्वपूर्ण है, लेकिन अभी तक इसके संतोषजनक परिणाम नहीं मिल पाए हैं. यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि सैनिटरी टॉयलेट के निर्माण के लिए लाभार्थियों को अपने हिस्से की रकम (बीपीएल परिवारों के लिए 300 रुपये और एपीएल के लिए 2500 रुपये) देने के लिए तैयार किया जाए और सरकार के हिस्से की राशि मनरेगा के कोष से उपलब्ध कराई जाए. यदि ऐसा हो तो ग्रामीण इलाक़ों में लोग ज़्यादा संख्या में अपने घर के अंदर सैनिटरी टॉयलेट के निर्माण के लिए तैयार हो सकते हैं. पूर्ण स्वच्छता अभियान को मनरेगा के साथ जोड़े जाने से एक टॉयलेट के निर्माण की कुल लागत क़रीब 6500 रुपये होगी. यदि प्रस्तावित नई योजना के प्रति ग्रामीणों को जागरूक बनाने के लिए इन इलाक़ों में जोरदार प्रचार अभियान चलाया जाए और फिर इसे क्रियान्वित किया जाए तो पूर्ण स्वच्छता अभियान की तकदीर बदल सकती है.

नए मॉडल के सैनिटरी टॉयलेट के निर्माण की योजना को मनरेगा के अंतर्गत व्यक्तिगत लाभ योजनाओं के साथ जोड़ दिए जाने से इसकी लोकप्रियता में इज़ाफ़े की उम्मीद की जा सकती है और पूर्ण स्वच्छता अभियान में नई जान आ सकती है. यदि सैनिटरी टॉयलेट के निर्माण में मनरेगा के फंड के इस्तेमाल का प्रावधान हो तो ग्रामीण इलाक़ों में स्वास्थ्य और स्वच्छता का हमारा सपना हक़ीक़त में तब्दील हो सकता है. साथ ही मनरेगा के क्रियान्वयन में भी सुधार हो सकता है. मनरेगा के बेहतर और तेज क्रियान्वयन के लिए यह ज़रूरी है कि स्कीम पहले से ही तैयार रखी जाए, निष्पादन योग्य कामों के बारे में समय रहते फ़ैसला लिया जाए. आवश्यक यह भी है कि योजना बनाते समय अलग-अलग मौसमों को ध्यान में रखा जाए. ख़ासकर बारिश के मौसम में होने वाली दिक़्क़तों को योजना में जगह देना ही होगा. मनरेगा एक मांग आधारित योजना है. इसका प्राथमिक उद्देश्य बेरोज़गारों को रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना है, जिससे शहरों की ओर हो रहे पलायन में कमी आए और इसके साथ ग्रामीण इलाक़ों में आधारभूत संरचनाओं का विकास भी संभव हो. लेकिन समस्या यह है कि मनरेगा के क्रियान्वयन में ज़्यादा जोर सरकारी धन को ज़्यादा से ज़्यादा ख़र्च करने पर होता है. इस नज़रिए को भी बदलने की ज़रूरत है.मनरेगा की पूर्ण सफलता सुनिश्चित करने के लिए इन बातों पर ध्यान देना होगा. यह जितनी जल्दी हो जाए, उतना अच्छा है. यह बेहद ज़रूरी है कि योजना के क्रियान्वयन पर लगातार नज़र रखी जाए, निष्पादित योजनाओं के सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था हो और वित्तीय गतिविधियों का रिकॉर्ड रखा जाए. मनरेगा के अब तक के अनुभव के परिप्रेक्ष्य में इसकी संरचना और क्रियान्वयन के तरीक़े में सुधार किए जाएं तो यह योजना वास्तव में देश की ग़रीब जनता की कई समस्याओं का एकमुश्त समाधान उपलब्ध कराने में सफल हो सकती है.

(लेखक पश्चिम बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से कोई संबंध नहीं है.)

feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया बधाई का पात्र

आपने सचमुच एक साथ कई ख़ुशियों के समाचार दिए हैं, इसके लिए बधाई. उर्दू भाषा में अंतरराष्ट्रीय स्तर के साप्ताहिक अख़बार उर्दू चौथी दुनिया का प्रकाशन एक सराहनीय एवं साहसिक प्रयास है. लगभग 20 करोड़ उर्दू भाषी पाठकों को वैश्वीकरण की बदली दुनिया में नित नई सूचनाओं, शोधों एवं परिवर्तनों से परिचित कराना एक सुनियोजित प्रयास एवं समर्पित टीम की मांग करता है. वैसे उर्दू में तमाम पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं, पर वे ज़्यादातर कामचलाऊ या इंटरनेट की उधार की सामान्य सामग्री से ही काम चला लेते हैं, इसलिए एक स्तरीय उर्दू प्रकाशन की आवश्यकता सामयिक थी. आपने उसकी पूर्ति का बीड़ा उठाया, इसके लिए बधाई. हिंदी चौथी दुनिया ने अल्पावधि में ही पाठकों की बड़ी संख्या का विश्वास जीता है. इसका सामग्री चयन, संपादन एवं प्रस्तुति सब कुछ सराहनीय है. हाथ में आते ही इसे पहले पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक पढ़े बिना रहा नहीं जाता. इंटरनेट टीवी प्रारंभ करने और लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स द्वारा चौथी दुनिया को प्रमाणपत्र मिलने की ख़बर से आपके मित्रों, प्रशंसकों एवं पाठकों का हर्षित होना स्वाभाविक है. एक लंबे अर्से से आप पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हैं. पत्रकारिता की दुनिया में आ रहे उतार-चढ़ावों के आप स्वयं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हैं और उनसे प्रभावित भी अवश्य हुए होंगे. फिर भी आप अपनी जगह मज़बूती से जमे हैं, यह देखकर बहुत अच्छा लगता है. मेरी शुभकामना है कि आपका सुयश और फैले, आपका हर प्रयत्न सफल हो और पत्रकारिता की विश्वसनीयता का संकट समाप्त हो. इधर पेड न्यूज़ की नई चाल से जो संदेह उपजे हैं, उससे पत्रकारों की छवि भी धूमिल हुई है. एक लंबी गौरवपूर्ण परंपरा आहत हुई है. चौथी दुनिया इन सब संदेहों, आशंकाओं से परे रहकर स्वस्थ संवाद, विश्वसनीयता एवं निर्भीकता की मिसाल बनेगा, मैं ऐसी आशा करता हूं.

-राजेंद्र चौधरी, प्रदेश प्रवक्ता- *समाजवादी पार्टी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश.*

सफलता या विफलता

चौथी दुनिया ने इस बार बिल्कुल सही प्रश्न उछाला है, प्रधानमंत्री जी से पूछा है एक साल के शासनकाल में कितना हुआ उजाला है. जो भी किया सरकार ने, उससे अमीर मालामाल हो गए, बेरोज़गारी बढ़ी और ग़रीब सभी कंगाल हो गए. खेत में किसान भूखा, जंगल में जनजातियां भूखी, अमीर-सरकारी अफसर मलाई चाटें, ग़रीब को नसीब नहीं रोटी सूखी. घोटालों की बाढ़ आ गई, लूटता रहा देश, जो बचा, उसे महंगाई खा गई. योजनाएं बनती रहीं, नेता-अभिनेता-उद्योगपति लाभ लेते रहे, जनता उल्लू बनती रही. प्रधानमंत्री जी, अगर आपके शासनकाल की यह सफलता है तो फिर विफलता क्या है?

-एस आर शर्मा, *ई-मेल से.*

क़ाबिले तारीफ़

लोकप्रिय हिंदी साप्ताहिक में सूचना का अधिकार स्तंभ प्रकाशित होने के कारण मैं इसका नियमित पाठक बन गया हूं. मैं सूचना के अधिकार के तहत बराबर प्रपत्र-क देता रहता हूं. इस कारण इससे मुझे काफी सहायता मिलती है. पिछले अंक में सूचना के बदले कितना शुल्क आलेख काफी जानकारी देता है. ऐसी सूचनाओं से काफी मदद मिलती है. केंद्रीय सूचना आयोग के कुछ जनोपयोगी फ़ैसले भी प्रकाशित करें. बिहार राज्य सूचना आयोग पर भी पैनी निगाह की ज़रूरत है, मुख्य सूचना आयुक्त के क्रियाकलापों से आवेदक काफ़ी परेशान हैं. मैंने उनके ख़िलाफ़ राज्यपाल को ज्ञापन भेजा है.

-शैलेंद्र सिंह तरकार, *खगड़िया, बिहार.*

भोपाल गैस कांड

28 जून-04 जुलाई के अंक के तोप मुकाबिल कॉलम के तहत भोपाल गैस पीड़ितों के दर्द को भी बखूबी उठाया गया है. उन पीड़ितों का दर्द सही मायनों में कोई समझ ही नहीं पाया. ताज्जुब तो इस बात का है कि जिनसे उम्मीद की गई, उन्होंने ही धोख़ा दिया. राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार और न्यायपालिका भी विफल रही. 26 साल बाद ऐसे भयंकर अपराध के लिए महज़ 2 साल की सजा! शर्म भी नहीं आई? जनता किस पर भरोसा करे? दुनिया के सबसे अमीर देश की कंपनी गलती करे और साफ बच जाए. क्यों? अपराधियों को बचाने वाले भी अपराधी हैं. ऐसी न्यायपालिका किस काम की, जो 26 साल बाद फैसला दे और वह भी ऐसा! वह सरकार किस काम की, जो अपने देशवासियों के दर्द का व्यापार करे?

-कैलाशी शर्मा, *हिंद मोटर्स, हुगली, पश्चिम बंगाल.*

साहस को सलाम

28 जून के बिहार परिशिष्ट में छपा लेख पर्यावरण का रखवाला जय श्रीराम अच्छा लगा. लेख में आरक्षी जितेंद्र शर्मा द्वारा पुलिस की नौकरी के बावजूद पर्यावरण बचाने हेतु पेड़ लगाने की बात बड़े जज़्बे एवं तपस्या से कम नहीं है. उनके इस साहस को सलाम. आज पूरा विश्व पर्यावरण को लेकर परेशान है. अपनी पुलिसिया नौकरी का ईमानदारी से पालन करने के साथ वृक्ष लगाने का काम अपने आप में एक मिसाल है. उनके इस साहसिक क़दम से लोगों को सीख लेनी चाहिए.

-शंकर शर्मा, *बेगूसराय, बिहार*

वाह सोनिया जी!

मैंने हाल में आपका अख़बार पढ़ा. कवर स्टोरी सोनिया गांधी और गुजरात, दस जनपथ से लेकर गुजरात तक की राजनीति की हकीकत बयां करती है. राजनेताओं का दिखावटी चेहरा तो मालूम था, लेकिन इस तरह की आपसी उठा-पटक पढ़कर तो कहना पड़ेगा...वाह सोनिया जी...खूब किया...

-अपूर्व (गुजरात), *ई-मेल से.*

आप अपने स्वतंत्र विचार तथा प्रतिक्रियाएं हमें इसी पते पर भेजें. संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर-11 नोएडा, (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

संतोष भारतीय

हेडली से पूछताछ करने वाले सामने आएं

महंगाई के ऊपर प्रतिक्रियाएं आनी बंद हो गई हैं, शायद महंगाई कम हो गई है या फिर महंगाई के ऊपर राजनीति करने वालों का वार्षिक कर्तव्य समाप्त हो गया है. एक दिन का भारत बंद और इस बंद में भाजपा से लेकर वामपंथियों तक का शामिल होना तथा यह दावा करना कि इसे आम आदमी का समर्थन प्राप्त है, एक आंशिक सच्चाई है. सुबह की शुरुआत शरद यादव और लालकृष्ण आडवाणी के बयानों से हुई कि पिछले बीस सालों में यह पहली बार हुआ है, मगर शाम ए बी वर्धन के गुस्से से हुई, जिसमें उन्होंने कहा कि कहां है भाजपा, कैसी है भाजपा. आम आदमी कहीं छला गया है. उसे लगा था कि महंगाई को ही लेकर सही, राजनैतिक दल सरकार पर दबाव डालने के लिए अपने विचारात्मक मतभेदों को समाप्त कर साथ तो आए हैं. शायद सरकार पर दबाव बढ़े और वह महंगाई कम करने के रास्ते तलाशे. लेकिन अब लगता है कि महंगाई का विरोध भी एक प्रतीकात्मक विरोध था, उसमें गंभीरता नहीं थी.

सरकार से कुछ कहना व्यर्थ है, क्योंकि सरकार की नज़र में आम आदमी अब कहीं है ही नहीं. कल्याणकारी सरकार की समाजवादी अवधारणा अब समाप्त हो चुकी है. संविधान में व्यर्थ ही लिखा है और अब हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए कि जल्दी ही संविधान संशोधन आएगा और संविधान में लिखा समाजवादी समाज का संकल्प समाप्त कर दिया जाएगा. अब सरकार की पहली प्राथमिकता बाज़ार और भारत के पैसे वाले हैं, जिनके लिए वह अपनी नीतियां बना रही है. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने सन बयानवे में वित्तमंत्री पद पर आने के बाद संसद में अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था कि नई आर्थिक नीतियों की वजह से दो हज़ार दस में बिजली पर्याप्त हो जाएगी, सड़कें बन जाएंगी, चिकित्सा व शिक्षा का नया ढांचा खड़ा हो जाएगा तथा ग़रीबी बहुत हद तक दूर हो जाएगी. विकास की रफ्तार तेज़ हो जाएगी, जिससे देश महाशक्ति बन जाएगा. आज उसी दो हज़ार दस में हम हैं. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को हम कहना चाहते हैं कि वह अपना भाषण एक बार फिर पढ़ें और हमें बताएं कि यह सब क्यों नहीं हो पाया.

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने एक बार अच्छे राजनीतिज्ञ की परिभाषा बताई थी कि अच्छा राजनीतिज्ञ वही है, जो भविष्यवाणी करे और बाद में उसे पूरा न होने के कारणों के बारे में भी उसी तार्किकता के साथ बताए. मनमोहन सिंह शायद चर्चिल के ज़्यादा योग्य मानने वालों में हैं, क्योंकि वह कभी इसे बताएंगे ही नहीं. भारत सरकार की ऐसी ही एक और घोषणा है कि दो हज़ार पंद्रह तक देश से बालश्रम और बाल दासता समाप्त हो जाएगी. पांच साल बाद हम देखेंगे कि समस्या और विकराल हो गई है और सरकार का दावा या वादा क्यों पूरा नहीं हो पाया, इसे हम कभी जान नहीं पाएंगे.

सरकार ने अपना रास्ता तय कर लिया है और बता दिया है कि वह बाज़ार के नियमों की तरह देश को चलाएगी, जिसमें अस्सी करोड़ लोग बंधुआ मज़दूर की तरह ज़िंदा रहेंगे, लेकिन भारत के राजनैतिक दलों को क्या हुआ है. हर चीज़ का ढांचा, चाहे वह शिक्षा का हो, स्वास्थ्य का हो या विकास का हो, टूटा पड़ा है. महंगाई ऐसा सवाल बनकर सामने आई है, जिसे लेकर विरोधी दल जनता के बीच जा सकते थे तथा उसे नई राजनैतिक पहल के लिए तैयार कर सकते थे. आज जनता को समझाने की ज़रूरत है कि उसके लिए कैसी राजनैतिक व्यवस्था चाहिए. एक दिन के विरोध और फिर बिखराव ने बता दिया है कि महंगाई के सवाल पर विरोधी दलों में गंभीरता नहीं है. शायद संसद के सत्र में एक दिन या दो दिन शोर हो कि महंगाई बहुत बढ़ गई है, उसके बाद फिर ख़ामोशी छा जाएगी.

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने सन बयानवे में वित्तमंत्री पद पर आने के बाद संसद में अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था कि नई आर्थिक नीतियों की वजह से दो हज़ार दस में बिजली पर्याप्त हो जाएगी, सड़कें बन जाएंगी, चिकित्सा व शिक्षा का नया ढांचा खड़ा हो जाएगा तथा ग़रीबी बहुत हद तक दूर हो जाएगी. विकास की रफ्तार तेज़ हो जाएगी, जिससे देश महाशक्ति बन जाएगा. आज उसी दो हज़ार दस में हम हैं. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को हम कहना चाहते हैं कि वह अपना भाषण एक बार फिर पढ़ें और हमें बताएं कि यह सब क्यों नहीं हो पाया.

लोकसभा में चिंता तो सभी व्यक्त करेंगे, लेकिन कारवाई के लिए साथ मिलकर कभी दबाव नहीं डालेंगे.

एक दिन के बंद में रेलें ज़बरदस्ती रोकी गईं, सड़कें बंद की गईं और कई जगहों पर ग़रीबों का सामान ग़रीबों ने ही लूट लिया. इस बंद ने नक्सलवादियों को तार्किक समर्थन दे दिया तथा उनके रेल बंद करने को लेकर अब किस मुंह से राजनैतिक दल उनकी आलोचना करेंगे. जिन इलाक़ों में नक्सलवादी चार से पांच दिन का बंद करते हैं, वहां की रिपोर्टें नहीं छपतीं, क्योंकि वहां बंद कामयाब होता है. जनता के लिए सरकार और विपक्षी दल बिल्कुल एक तरह से व्यवहार कर रहे हैं. सरकार लोकतांत्रिक ढंग से कही गई बात नहीं सुनती और दूसरी ओर विपक्षी दल लोकतांत्रिक ढंग से विरोध नहीं करते. दोनों अपने कामों से देश की जनता में यह संदेश भेज रहे हैं कि नक्सलवादी विचार के लोग ही ज़्यादा सही हैं. इससे नक्सलवादी विचारधारा का सपोर्ट बेस मध्यम वर्ग में तैयार हो रहा है. आज इसकी चिंता न सरकार को है और न विरोधी दलों को. लेकिन दो हज़ार चौदह का चुनाव ऐसे नतीजे देगा, जो सीख के रूप में हमेशा सामने रहेंगे.

महंगाई जैसे सवालों पर ध्यान हटाने के लिए सरकार का साथ विरोधी दल भी दे रहे हैं. अमेरिका में हेडली बंद है, जिसके बारे में दावा किया जा रहा है कि मुंबई हमलों का वह बड़ा साज़िश करने वाला रहा है. हमारी नई बनी सुरक्षा एजेंसी एनआईए के अफसर उससे पूछताछ करने अमेरिका गए. कुछ दिन रहने के बाद वे वापस आ गए. अचानक देश के कुछ अख़बारों में ख़बर छपी कि इशरतजहां आत्मघाती हमलावर थी, जो नरेंद्र मोदी को मारने गई थी. ये कौन अफसर हैं, जो अमेरिका से आने के बाद मीडिया में ख़बरें लीक कर रहे हैं. फिर ख़बर लीक करनी थी तो मुंबई हमलों के बारे में लीक करनी थी, जिससे पता चलता कि हमारे अफसरों को पूछताछ करनी आती भी है या नहीं. उन्हें आने के बाद प्रेस कांफ्रेंस करनी चाहिए थी, पर हुआ उल्टा. उन्होंने तो नरेंद्र मोदी और उनके अफसर बंजारा को क्लीन चिट देने का पहला काम किया.

गृहमंत्री चिदंबरम का मैनेजमेंट लगता है अब सही रास्ते पर है. ख़बरें पहले भी आ रही थीं कि कांग्रेस के भीतर भी एक संघ लॉबी है, अब वह हक़ीक़त बनती दिखाई दे रही है. हेडली का नाम लेकर 26/11 की हक़ीक़त कभी नहीं बताई जाएगी, पर गुजरात के उन अफसरों के पक्ष में माहौल तैयार करने का काम होगा, जिन पर देश का सर्वोच्च न्यायालय भी शक करता है. इसे मनमोहन सिंह और चिदंबरम के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार के एनआईए के अफसर कर रहे हैं. चिदंबरम को चाहिए कि अमेरिका जाने वाली टीम के नामों का ख़ुलासा करें और उनसे कहें कि वे देश के प्रेस के सामने आकर हेडली से पूछताछ का पूरा ब्योरा दें. उन्हें देश के सामने अपना फर्ज़ निभाना है, न कि संघ का एजेंडा पूरा करने में अपनी क्षमता लगानी चाहिए.

संपादक
editor@chauthiduniya.com

इंसाफ़ की आवाज़ कहीं से नहीं आती

अफ़्फ़ाफ़ अज़हर

पाकिस्तान में दो साल पहले स्वतंत्रता के ऐतिहासिक संघर्ष के बाद सस्ते और तात्कालिक न्याय के लिए बड़े-बड़े दावों के साथ वजूद में आने वाली स्वतंत्र न्यायपालिका से तात्कालिक न्याय की उम्मीद आज भी एक सपना ही है. न्यायपालिका की बहाली के बावजूद पाकिस्तानी अदालतों में लंबित पड़े मुक़दमों की संख्या 13 लाख से अधिक हो चुकी है. आंकड़ों के अनुसार, देश भर की तमाम अदालतों में प्रतिदिन 2 से 4 हज़ार नए मुक़दमे आते हैं, वहीं मुक़दमों पर सुनवाई करने की दर एक फ़ीसदी से भी कम है. सुप्रीम कोर्ट, हाईकोर्ट और फेडरल शरीयत कोर्ट में लंबित पड़े मुक़दमों की संख्या एक लाख 85 हज़ार से भी अधिक है. इनमें से बहुत से मुक़दमे तो एक दशक से भी ज़्यादा समय से लंबित हैं. सबसे ज़्यादा लंबित मुक़दमे पंजाब राज्य के हैं. सिर्फ़ लाहौर हाईकोर्ट में ही एक लाख 15 हज़ार से अधिक मुक़दमे लंबित हैं. जबकि मातहत अदालतों में 9 लाख 50 हज़ार से अधिक मुक़दमे लंबित हैं और सिंध हाईकोर्ट एवं मातहत अदालतों में एक लाख 30 हज़ार से अधिक मुक़दमे विचाराधीन हैं. ब्लूचिस्तान में लगभग 12 हज़ार मुक़दमे लंबित हैं. पेशावर में एक जज को अदालत की तौहीन का नोटिस मिलने से सभी मुक़दमों की सुनवाई रोक दी गई है. क़ानूनी तौर पर एक सिविल जज के पास सुनवाई के लिए 2 हज़ार से अधिक मुक़दमे नहीं हो सकते, जबकि हर सिविल जज के पास इस समय 8 हज़ार से अधिक मुक़दमे हैं. देश भर में हज़ारों ऐसे लोग जेलों में पड़े हैं, जिनके मुक़दमों का फ़ैसला लंबित है और इनमें से ज़्यादातर तो 10-10 सालों से कैद में हैं.

एक अजीब इत्तेफाक़ है कि आज हमारे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो लंबित मुक़दमों की भूलभुलइयों से गुज़रते हुए 8 और 5 साल निरंतर जेलों में रह चुके हैं. आख़िर जेलों के हालात को इनसे ज़्यादा कौन जान सकता है. विश्व के किसी भी दूसरे देश में ऐसा आज तक न हुआ है और न होने की उम्मीद है. एक ही समय में देश के दो सबसे बड़े पद ऐसे व्यक्तियों के पास हैं, जो ख़ुद एक लंबे समय तक जेल काट चुके हैं.

बड़ी अदालतें राजनीतिक मुक़दमों में ज़्यादा दिलचस्पी रखती हैं, जबकि आम आदमी मुक़दमे में उलझ कर सालों से जेल में पड़े-पड़े मौत की दुआएं मांग रहे हैं.

ख़ुदा के लिए जेल से मेरी जान छुड़ा दो या फिर दुआ करो कि मुझे मौत आ जाए, यह कहना था 25 वर्षीय मुहम्मद अज़ीम का, जो एक लंबित मुक़दमे की वजह से पिछले सात साल से जेल की सलाख़ों के पीछे है. सेंट्रल जेल कराची में पिछले 9 साल से फ़ैसले की प्रतीक्षा कर रहे 55 वर्षीय अब्दुल ग़फ़्फ़ार जिनका मुक़दमा अभी एक तारीख़ से आगे नहीं बढ़ सका है, का कहना है कि ग़रीबी की वजह से वह अपना वकील नहीं कर सके और सरकारी वकील कभी सुनवाई में उपस्थित नहीं होता. इनका कहना है कि मुक़दमे में उलझ कर जेल में सुनवाई की लंबी प्रतीक्षा से तो बेहतर है कि इससे पहले ही आत्महत्या कर लें. चार्ल्स फ़र्नांडो का कहना है कि उनके बहनोई को शक़ में गिरफ़्तार किया गया था और पिछले पांच सालों से वह पेशियां भुगत रहे हैं. वह हर पेशी पर हाज़िर होते हैं और एक नई तारीख़ लेकर आ जाते हैं, जबकि असली अपराधी देश से फ़रार हो चुका है. कराची की सेंट्रल जेल में 1800 लोगों की गुंजाइश है, मगर इस समय वहां चार हज़ार से भी अधिक लोग क़ैद हैं. इनमें अधिकतर ऐसे हैं, जिनके मुक़दमे लंबित हैं. देश की बाक़ी सभी जेलों की हालत सेंट्रल जेल कराची से अलग है. मानवाधिकार संगठनों के अनुसार, पाकिस्तान की जेलों में समस्याएं इतनी बढ़ चुकी हैं कि उन्होंने टाइम बम का रूप धारण कर लिया है. शक़ और छोटे-छोटे झगड़ों के आरोप में गिरफ़्तार अंडर ट्रायल और कम उम्र के बच्चों को जेल में पेशेवर अपराधियों के साथ रखा जाता है. जहां से वे अपराध की दुनिया में दाख़िल हो जाते हैं और जेलों को जुर्म का विश्वविद्यालय क़रार देने में अपनी मुहर लगाते हैं.

एक अजीब इत्तेफ़ाक़ है कि आज हमारे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो लंबित मुक़दमों की भूलभुलइयों से गुज़रते हुए 8 और 5 साल निरंतर जेलों में रह चुके हैं. आख़िर जेलों के हालात को इनसे ज़्यादा कौन जान सकता है. विश्व के किसी भी दूसरे देश में ऐसा आज तक न हुआ है और न होने की उम्मीद है. एक ही समय में देश के दो सबसे बड़े पद ऐसे व्यक्तियों के पास हैं, जो ख़ुद एक लंबे समय तक जेल काट चुके हैं. अब ऐसे लोगों की सरकार में भी जेलों की हालत और न्यायपालिका की व्यवस्था में सुधार न आ सके तो फिर किसी दूसरे से भला क्या उम्मीद रखी जा सकती है. आज हम जिस समाज से संबंध रखते हैं, वह बेशक़ असफल और अपाहिज है, जिसमें रहने वाले लोग बहरे, गूंगे और अंधे हैं. ऐसे में सच का झूठ के बेलगाम घोड़ों के पांव तले कुचला जाना अनहोनी बात नहीं है. जनहित के 13 लाख मुक़दमों का लंबित रहना इस समाज की पूरी झलक पेश कर देता है. स्वतंत्र न्यायपालिका के बावजूद यह व्यवस्था मज़लूमों के बजाय ज़ालिमों की मददगार है और जनता के बजाय भ्रष्ट लोगों की सुरक्षा करने वाली है. जनता ने सड़कों पर आकर चीफ़ जस्टिस को तो बहाल करा दिया, लेकिन न्यायपालिका को स्वतंत्रता दिलाने वाली जनता गुलाम की गुलाम ही रही. जनता को इस न्यायपालिका की स्वतंत्रता का क्या फ़ायदा मिला. यही कि तालिबान और आतंकवादी बम धमाकों और सामूहिक क़त्ल में शामिल होकर भी धड़ाधड़ अदालतों से दो दिनों के अंदर छूट रहे हैं और जिनके मुक़दमे व्यक्तिगत या धार्मिक नफ़रत के लिए बेवजह पैदा किए गए हैं, वे 10-10 सालों से जेलों में क़ैद हैं. तारीख़ों पर तारीखें डालना भी ग़रीबों को ख़त्म करने का एक तरीक़ा है कि मुक़दमा इतना लटकाओ कि हिम्मत न रहे या फिर ख़ुद ग़रीब ही न रहे. अगर कोई दिलजला शिक़ायत करने की कोशिश करे तो अदालत की तौहीन के तहत उसे निपटा दो. आज जब लाखों मुक़दमे लंबित हैं, तो ऐसे में कहां हैं वे हस्तियां, जिन्होंने घर-घर जाकर सस्ता न्याय देने का नारा लगाकर वोट हासिल किए थे. अगर जनता की सुरक्षा करने वाली पुलिस और न्याय के अलमबरदार जज तोहफे स्वीकार करेंगे और सिफ़ारिशी हलफ़ उठाएंगे तो लंबित मुक़दमों की संख्या 26 लाख से अधिक होने में ज़्यादा देर नहीं लगेगी. जब कोई राजनेताओं के सहारे और रहमोकरम पर जज बना हो तो न्याय भी सिर्फ़ बिलावल हाउस और राउंड तक ही सीमित रहेगा न. वाह! यह है इस्लाम का किला कहलाने वाला इस्लामी रिपब्लिक पाकिस्तान, जहां देश की अदालतों के अलावा शरई अदालतें, फौजी अदालतें, आतंकवाद की विशेष अदालतें, जरगा और पंचायत के बड़े नेटवर्क के अलावा व्यक्तिगत तौर पर मोहल्लों में भी न्याय के ठेकेदार मौजूद हैं. फिर भी न्याय मिलने का यह आलम है कि शर्म से डूब मरने को दिल करता है.

feedback@chauthiduniya.com

शेख ने बीएमसी 1981 में ज्वाइन किया और छह वर्ष वाद वह सेवानिवृत हो जाएंगे.

सूचना का अधिकार
जानने का अधिकार
जीने का अधिकार
चौथी दुनिया की पहल

प्रथम अपील कब और कैसे करें

आपने सूचना पाने के लिए किसी सरकारी विभाग में आवेदन किया है, 30 दिन बीत जाने के बाद भी आपको सूचना नहीं मिली या मिली भी तो ग़लत और आधी–अधूरी अथवा भ्रामक. या फिर सूचना का अधिकार क़ानून की धारा 8 के प्रावधानों को तोड़–मरोड़ कर आपको सूचना देने से मना कर दिया गया. यह कहा गया कि फलां सूचना दिए जाने से किसी के विशेषाधिकार का हनन होता है या फलां सूचना तीसरे पक्ष से जुड़ी है इत्यादि. अब आप ऐसी स्थिति में क्या करेंगे? ज़ाहिर है, चुपचाप तो बैठा नहीं जा सकता. इसलिए यह ज़रूरी है कि आप सूचना का अधिकार क़ानून के तहत ऐसे मामलों में प्रथम अपील करें. जब आप आवेदन जमा करते हैं तो उसके 30 दिनों बाद, लेकिन 60 दिनों के अंदर लोक सूचना अधिकारी से वरिष्ठ अधिकारी, जो सूचना क़ानून के तहत प्रथम अपीलीय अधिकारी होता है, के यहां अपील करें. यदि आप द्वारा अपील करने के बाद भी कोई सूचना या संतोषजनक सूचना नहीं मिलती है या आपकी प्रथम अपील पर कोई कार्रवाई नहीं होती है तो आप दूसरी अपील कर सकते हैं. दूसरी अपील के लिए आपको राज्य सूचना आयोग या केंद्रीय सूचना आयोग में जाना होगा. फ़िलहाल इस अंक में हम सिर्फ़ प्रथम अपील के बारे में ही बात कर रहे हैं. हम प्रथम अपील का एक प्रारूप भी प्रकाशित कर रहे हैं. अगले अंक में हम आपकी सुविधा के लिए द्वितीय अपील का प्रारूप भी प्रकाशित करेंगे. प्रथम अपील के लिए आमतौर पर कोई फीस निर्धारित नहीं है. हालांकि कुछ राज्य सरकारों ने अपने यहां प्रथम अपील के लिए भी शुल्क निर्धारित कर रखा है. प्रथम अपील के लिए कोई निश्चित प्रारूप (फॉर्म) नहीं होता है. आप चाहें तो एक सादे काग़ज़ पर भी लिखकर प्रथम अपील तैयार कर सकते हैं. हालांकि इस मामले में भी कुछ राज्य सरकारों ने प्रथम अपील के लिए एक ख़ास प्रारूप तैयार कर रखा है. प्रथम अपील

आप डाक द्वारा या व्यक्तिगत रूप से संबंधित कार्यालय में जाकर जमा करा सकते हैं. प्रथम अपील के साथ आरटीआई आवेदन, लोक सूचना अधिकारी द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना (यदि उपलब्ध कराई गई है तो) एवं आरटीआई आवेदन के साथ दिए गए शुल्क की रसीद आदि की फोटोकॉपी लगाना न भूलें. इस क़ानून के प्रावधानों के अनुसार, यदि लोक सूचना अधिकारी आपके द्वारा मांगी गई सूचना 30 दिनों के भीतर उपलब्ध नहीं कराता है तो आप प्रथम अपील में सारी सूचनाएं नि:शुल्क उपलब्ध कराने के लिए भी कह सकते हैं. इस क़ानून में यह एक बहुत महत्वपूर्ण प्रावधान है. भले ही सूचना हज़ार पन्नों की क्यों न हो. हम उम्मीद करते हैं कि आप इस अंक में प्रकाशित प्रथम अपील के प्रारूप का ज़रूर इस्तेमाल करेंगे और अन्य लोगों को भी इस संबंध में जागरूक करेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

यदि आपने सूचना क़ानून का इस्तेमाल किया है और अगर कोई सूचना आपके पास है, जिसे आप हमारे साथ बांटना चाहते हैं तो हमें वह सूचना निम्न पते पर भेजें. हम उसे प्रकाशित करेंगे. इसके अलावा सूचना का अधिकार क़ानून से संबंधित किसी भी सुझाव या परामर्श के लिए आप हमें ईमेल कर सकते हैं या हमें पत्र लिख सकते हैं. हमारा पता है :

चौथी दुनिया
एफ–2, सेक्टर–11, नोएडा
(गौतमबुद्ध नगर) उत्तर प्रदेश, पिन –201301
ई–मेल : rti@chauthiduniya.com

प्रथम अपील का प्रारूप

सेवा में,
प्रथम अपीलीय अधिकारी,
(विभाग का नाम)
(विभाग का पता)

विषय: सूचना का अधिकार क़ानून 2005 की धारा 19(1) के तहत प्रथम अपील.

महोदय,
मैंने सूचना का अधिकार क़ानून 2005 के तहत आपके विभाग के लोक सूचना अधिकारी से निम्नलिखित सूचना उपलब्ध कराने के लिए आवेदन किया है. (आवेदन की प्रति संलग्न है)

सूचना का अधिकार क़ानून 2005 में सूचना देने के लिए निर्धारित की गई समय सीमा समाप्त हो जाने के बावजूद
–लोक सूचना अधिकारी द्वारा मुझे अब तक किसी प्रकार की सूचना नहीं दी गई है.
–मुझे जो जवाब प्राप्त हुआ है, वह अधूरा है/गलत है/मेरे आवेदन से संबंधित नहीं है.

आपसे निवेदन है कि सूचना का अधिकार क़ानून 2005 की धारा 19(1) के तहत इस विषय पर सुनवाई करें और लोक सूचना अधिकारी को सूचना उपलब्ध कराने का आदेश दें. इस क़ानून के प्रावधानों के अनुसार लोक सूचना अधिकारी को मेरे द्वारा मांगी गई सूचना नि:शुल्क उपलब्ध कराने का भी आदेश दें. साथ ही सूचना का अधिकार क़ानून के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए लोक सूचना अधिकारी के विरुद्ध कार्रवाई करने का आदेश दें.

नाम.....
पता.....

संलग्नक:
1. आवेदन की प्रति.
2. लोक सूचना अधिकारी द्वारा दी गई सूचना (यदि दी गई है तो) की प्रति.
3. आवेदन शुल्क रसीद की प्रति.

ज़रा हट के

ज़िंदा कर्मचारी रिकॉर्ड में मुर्दा

बृहन्मुंबई महानगरपालिका (बीएमसी) ने एक अजीबोग़रीब कारनामा कर लोगों को चौंका दिया है. हो सकता है, इस ख़बर को पढ़कर आप भी चौंक जाएं. बीएमसी ने अपने एक कर्मचारी को ज़िंदा रहते हुए मृत घोषित कर दिया. इससे वह कर्मचारी भी स्तब्ध है. जानकारी के मुताबिक़, 52 वर्षीय अलाउद्दीन शेख बीएमसी में सुरक्षाकर्मी हैं. वह नियमित रूप से कार्य करते हैं और वेतन भी उठाते हैं, लेकिन उन्हें पिछले वर्ष बीएमसी ने मृत घोषित कर दिया. शेख के अनुसार, बीते मई माह में उनके सहयोगियों ने बताया कि बीएमसी ने अपने रिकॉर्ड में उन्हें मृत घोषित कर दिया है. जबकि वह रोज़ाना काम पर जाते हैं और समय से वेतन भी उठाते हैं. इस भूल को सही कराने के लिए शेख ने कई अधिकारियों के पास चक्कर लगाए, लेकिन किसी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया. शेख ने कहा कि वह अल्लाह का शुक्रिया अदा करते हैं कि उनकी पत्नी को इस संबंध में किसी ने नहीं बताया. वह हाई ब्लडप्रेशर से ग्रसित हैं. अगर उन्हें पता चल जाता तो कुछ भी हो सकता था. बकौल शेख, यह काफी हास्यास्पद है. मुझे कैसे और किस आधार पर मृत घोषित कर दिया गया.

शेख ने 1981 में बीएमसी ज्वाइन किया था और छह वर्ष बाद वह सेवानिवृत्त हो जाएंगे. वर्तमान में वह जी–साउथ वार्ड ऑफिस में कार्यरत हैं. एक क्लर्क की ग़लती से शेख समस्या में फंस गए हैं. 2006 में उन्होंने बेटी की शादी के लिए म्युनिसिपल कॉरपोरेशन बैंक से 1.25 लाख रुपये का लोन लिया था. तबसे वह हर महीने बैंक को तीन हज़ार रुपये दे रहे हैं, लेकिन उन्हें अभी भी 35,000 रुपये बैंक को चुकाने हैं. शेख ने बताया कि जब बैंक अधिकारियों को मेरी मौत की ख़बर मिली तो वे भी परेशान हो उठे. इस मामले पर सफ़ाई देते हुए बीएमसी के संयुक्त सुरक्षा अधिकारी एस वी कुलकर्णी ने कहा कि हम यह स्वीकार करते हैं कि ग़लती हुई है. हम इसका सुधार कर रहे हैं. ऐसा भूलवश हो गया, क्योंकि शेख नियमित तौर पर ड्यूटी नहीं करते.

दिल को मज़बूत बनाती है चॉकलेट

जब बच्चे अधिक चॉकलेट खाते हैं तो माताएं उन्हें समझाती हैं कि इससे तुम्हारे दांत सड़ जाएंगे, इसलिए चॉकलेट खाना कम कर दो. यह तुम्हारी सेहत के लिए लाभदायक होगा, लेकिन शायद उन्हें पता नहीं है कि गहरे रंग की चॉकलेट खाने से दिल मज़बूत होता है. मतलब यह कि चॉकलेट खाना आपकी सेहत के लिए अच्छा है. अगर अब चॉकलेट खाते वक़्त आपकी मां आपको डांटें तो आप उनसे कह सकते हैं कि वह जो समझ रही हैं, वैसा बिल्कुल नहीं है. यह तो हुई बच्चों वाली बात. अब बड़ों के लिए भी एक अच्छी ख़बर है. हाल में हुए एक शोध में इसका ख़ुलासा हुआ है कि गहरे रंग की चॉकलेट खाने से दिल का दौरा नहीं पड़ता. यह आपके दिल के लिए लाभदायक है. इसलिए अगर दिल को मज़बूत बनाना है तो चॉकलेट से रिश्ता जोड़ना होगा.

इतना ही नहीं, शोधकर्ताओं ने चॉकलेट खाने की तुलना आधा घंटे कसरत करने से की है. इसका मतलब यह हुआ है कि अगर आप कसरत नहीं करना चाहते हैं तो चॉकलेट खाइए. इससे आपको उतना ही लाभ मिलेगा, जितना व्यायाम करने से मिलता है. शोधकर्ताओं ने यह भी ख़ुलासा किया है कि गहरे रंग की चॉकलेट हार्ट अटैक की आशंका को कम करती है. यह शोध ऑस्ट्रेलिया की एडिलेड यूनिवर्सिटी में हुआ. शोधकर्ताओं को गहरे रंग की चॉकलेट में फ्लानावोल्स नामक केमिकल मिला, जिसमें कोका बींस अधिक मात्रा में पाए जाते हैं, जो हार्ट अटैक रोकने में काफ़ी मददगार साबित हो सकते हैं. यही नहीं, ब्लड प्रेशर पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

दिल्ली, 19 जुलाई –25 जुलाई 2010

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
भावनात्मक संबंधों में निराशा मिलेगी. आपके पास कई विकल्प होंगे, जिनका आप भरपूर इस्तेमाल करेंगे और फ़ायदे में रहेंगे. व्यवसायिक क्षेत्र में किसी काम की शुरुआत करने में देर होगी. यात्रा आपकी उम्मीदों के मुताबिक़ सफल नहीं हो पाएगी.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
व्यवसायिक सफलता आपको ख़ुशियों से भर देगी. कोई नया प्रोजेक्ट शुरू होगा, जो मेहनत के बाद सफलता दिलाने वाला रहेगा. जो कार्य मुश्किल लग रहे थे, अब वे आसानी से पूरे होंगे. दिल के मामले में कोई नौजवान मददगार साबित होगा.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
आर्थिक क्षेत्र में किया जा रहा प्रयास सफल साबित होगा. पैसों से जुड़े मामले में आपके साथ बड़ों का आशीर्वाद रहेगा. व्यवसायिक स्तर पर आपका अस्त–व्यस्त व्यवहार तनाव का कारण बन सकता है. सेहत को लेकर परेशान न हों. नए संपर्क भाग्योदय में सहायक होंगे.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
वक़्त के साथ आप कई दिक्कतों से बाहर निकल आएंगे. कार्य में निखार लाने के लिए अपने तौर–तरीक़ों में बदलाव करेंगे. आप प्रॉपर्टी में पैसा निवेश करने के बारे में सोचेंगे. दिल से जुड़े कुछ मामले, जो आपको लंबे समय से परेशान कर रहे हैं, दूर हो जाएंगे.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
क़ीमती सामान की सुरक्षा पर ध्यान दें, नुक़सान संभव है. कार्यक्षेत्र में नई पहचान के साथ बेहतर उपलब्धि मिलेगी. अपने खाने का ख़ास ख्याल रखें, नहीं तो पेट से जुड़ी किसी दिक्कत से गुज़र सकते हैं. आपको मिले नए अवसर संबंधों में रोमांस एवं धैर्य लाएंगे.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
रोज़ाना की दिनचर्या से ऊबकर आप घूमने–फिरने के लिए बाहर जाएंगे. युवाओं को कार्यक्षेत्र में अच्छे परिणाम मिलेंगे. किसी बुजुर्ग व्यक्ति पर बेहद ख़र्च होगा. दोस्तों एवं परिवार के साथ आपको बेहद ख़ुशी मिलेगी. नया निवेश सोच– विचार करने के बाद करें.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
इस सप्ताह आप यात्रा करने से बचें, वरना आप बेहद थकान, हड्डियों में दर्द जैसी तकलीफों से गुजरेंगे. मित्रों के सुझावों पर अमल करें, आपकी मुश्किलें दूर होंगी. परिवार में कुछ मामले सिर उठाएंगे, जो आपके लिए तनाव का कारण बनेंगे.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर)
आपसे प्रभावित होकर लोग अपना रवैया बदलेंगे. सामाजिक जीवन में बड़ी भूमिका निभाने के अवसर मिलेंगे. अगर शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो उसमें सफलता के योग हैं. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
वाहन सावधानी से चलाएं, वरना दुर्घटना हो सकती है. पेट से संबंधित शिक़ायत हो सकती है. वित्तीय बदलाव सकारात्मक रहेंगे, लेकिन आपकी उम्मीदों से कम होंगे. अपनी कमज़ोरी दूर करने के साथ ही दूसरों के भरोसे रहने की आदत बदलें.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
परिवार में कोई नई शुरुआत ख़ुशियां और शांति लाने का कारण बनेगी. वाणी में मधुरता बनाए रखें, वरना किसी से विवाद की स्थिति पैदा हो सकती है. आय के क्षेत्र में नए रास्ते खुलेंगे. कार्यक्षेत्र में प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलेगा.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
लंबे समय से अधूरा पड़ा कार्य पूरा हो जाएगा. संतान के संबंध में कोई सुखद समाचार मिल सकता है. दोस्तों से अधिक बात न करें, क्योंकि लड़ाई–झगड़े की स्थिति पैदा हो सकती है. ज़रा सी समझदारी आपसी रिश्तों को बिखरने से बचा सकती है.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
नए कारोबार की शुरुआत के लिए अनुकूल समय है. एक दूसरे की भावनाओं को समझें, रिश्तों में सुधार होगा. धन संबंधी मामले सुधरेंगे. मित्रों से मुलाकात होगी. सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहेंगे. जायदाद संबंधी मामले सुलझेंगे. घर के कार्य पहले करें.

पंडित सुदर्शन
feedback@chauthiduniya.com

सीआईए प्रमुख का कहना है कि द्रोण हमले पाकिस्तान नहीं, अमेरिका के बचाव के लिए किए जा रहे हैं, जो हमारी सरकार के मुंह पर एक तमाचा है.

अमेरिकी युद्ध अब पाकिस्तान में?

थिंक टैंक की रिपोर्टों, न्यूयॉर्क टाइम्स के दावे, जॉन बटन एवं राबर्ट गेट्स के बयान से अमेरिकी संकल्पों का अनुमान उसी समय लगाया जा सकता था, मगर हमारे राजनेताओं की आंखों पर डॉलरों की पट्टी बंधी हुई है.

महमूद अयाज़

पिछले दस सालों के इतिहास का अवलोकन किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अगर पाकिस्तान की ओर से बिना शर्त सहयोग न मिलता और खुफिया जानकारियां मुहैय्या न कराई गई होतीं तो अमेरिका को हरगिज़ यह साहस न होता कि वह अफ़ग़ानिस्तान में अपनी सेना दाख़िल कर सके. इस संबंध में पाकिस्तान की भूमिका और सहयोग को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. मगर सवाल यह है कि अमेरिकी दोस्ती के बदले पाकिस्तान को क्या मिला? 9/11 के बाद पाक-अमेरिका संबंध व्यक्तिगत हितों पर आधारित रहे. अमेरिका द्वारा एक अत्याचारी एवं तानाशाह का समर्थन और पाकिस्तान की जनता को 9 वर्षों तक लोकतंत्र से वंचित रखना, अमेरिका की दोहरी नीति का मुंह बोलता सबूत है. 19 मार्च, 2009 को अमेरिकी थिंक टैंक की एक रिपोर्ट दुनिया भर के प्रसिद्ध समाचारपत्रों में प्रकाशित हुई, जिसमें कहा गया कि पाकिस्तान में फौजी कार्रवाई का प्रभाव बढ़ रहा है, जो कि विश्वशांति के लिए बहुत ही ख़तरनाक साबित हो सकता है.

आतंकवाद के ख़िलाफ़ विश्वयुद्ध अब पाकिस्तान में स्थानांतरित हो चुका है. 18 मार्च, 2009 को न्यूयॉर्क टाइम्स का खुलासा बताता है कि अमेरिका द्रोण हमलों का दायरा कोयटा तक फैलाने पर विचार कर रहा है. अमेरिका कोयटा के आसपास तालिबान के अड्डों को निशाना बनाएगा. इन्हीं दिनों राष्ट्रपति बराक ओबामा को दो रिपोर्टें अमेरिकी प्रशासन की ओर से भेजी गईं, जिनमें कहा गया कि पाकिस्तान में तालिबान का प्रभाव बढ़ रहा है, लिहाज़ा वहां द्रोण हमलों के साथ-साथ ज़मीनी ऑपरेशन भी किए जाएं और द्रोण हमलों का दायरा विस्तृत करते हुए उसे ब्लूचिस्तान तक फैला दिया जाए, जहां तालिबान का उच्च नेतृत्व सुरक्षित पनाहगाहों में छिपा है और वहां बैठकर अफ़ग़ानिस्तान में सैनिक एकता के ख़िलाफ़ कार्रवाई कर रहा है. 19 मार्च, 2009 को अमेरिकी रक्षा मंत्री राबर्ट गेट्स ने कहा था कि अमेरिका तालिबान को कुचलने के लिए कोयटा समेत पाकिस्तान भर में ऑपरेशन तेज़ करेगा. तालिबान जंगली इलाक़ों से ब्लूचिस्तान की तरफ़ पलायन कर चुके हैं. अमेरिका उनका हर तरफ़ पीछा करेगा और उनके ख़िलाफ़ ऑपरेशन किए जाएंगे. इसी दिन गेट्स ने ब्रिटेन के रक्षा मंत्री जॉन बटन से मुलाक़ात की और उसके बाद उन्होंने एक प्रेसवार्ता में कहा कि आगामी तीन से पांच वर्ष तक पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान ही अमेरिकी सैन्य कार्रवाई के लक्ष्य होने चाहिए.

थिंक टैंक की रिपोर्टों, न्यूयॉर्क टाइम्स के दावे, जॉन बटन एवं राबर्ट गेट्स के बयान से अमेरिकी संकल्पों का अनुमान उसी समय लगाया जा सकता था, मगर हमारे राजनेताओं की आंखों पर डॉलरों की पट्टी बंधी हुई है. लिहाज़ा वह यह देखने में असमर्थ रहे और उन रिपोर्टों और बयानों का खंडन करते रहे. मगर मौजूदा परिस्थितियों में अमेरिका को अफ़ग़ानी वाशिंदों और तालिबान के कड़े विरोध के कारण जान-माल का नुक़सान उठाना पड़ रहा है, जिससे उनकी सेना के हौसले पस्त हो गए हैं और वह सख्त निराशा का शिकार है.

इन्हीं परिस्थितियों के कारण अमेरिकी जनरल मेक क्रिस्टल ने रक्षा मंत्री को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने कहा कि अफ़ग़ानिस्तान में इस वक्त आतंकवाद के ख़िलाफ़ युद्ध के ख़तरनाक हालात हैं और आने वाले 6 माह तक किसी अच्छी ख़बर की आशा न की जाए. अमेरिकी गुप्तचर संस्था सीआईए की एक रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया जा चुका है कि अफ़ग़ानिस्तान के एक चौथाई इलाक़े पर तालिबान का क़ब्ज़ा है, जो करज़ई सरकार को प्रभावित कर रहा है. सीआईए के अध्यक्ष ने स्वयं स्वीकार किया है कि अफ़ग़ानिस्तान में पिछले 9 वर्षों से जारी युद्ध हमारे लिए बेहद कठिन साबित हुआ है.

ऐसा महसूस हो रहा है कि अमेरिका और उसके समर्थक अफ़ग़ानिस्तान से अपनी सेनाओं की वापसी निर्धारित कार्यक्रम से पहले ही शुरू कर देंगे. यहां कुछ मुख्य प्रश्न ये पैदा होते हैं कि क्या अमेरिका अफ़ग़ानिस्तान से निकल कर पाकिस्तान में आ बैठना चाहता है. क्या अमेरिका और उसके समर्थक पाकिस्तान में अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष कार्रवाई करना चाहते हैं? क्या अमेरिका आतंकवाद के इस युद्ध में पाकिस्तान को फंसाकर स्वयं निकलना चाहता है? संभवत: ऐसा ही नज़र आ रहा है कि अमेरिका यह तीनों दांव इस्तेमाल करना चाहता है, क्योंकि सीआईए के मुखिया लेविन पिंटा ने यह दावा किया है कि अलक़ायदा प्रमुख ओसामा बिन लादेन पाकिस्तान के बहुत ही ख़राब पहाड़ी इलाक़ों में मौजूद है. द्रोण हमले पाकिस्तान नहीं, अमेरिका के बचाव के लिए किए जा रहे हैं, ताकि अलक़ायदा फिर कभी यहां हमले न कर सके और इन कार्रवाइयों को अंजाम देने वाले अंतरराष्ट्रीय क़ानूनों का उल्लंघन करके भयानक ग़लती कर रहे हैं. दूसरी ओर अमेरिका का कहना है कि ब्लूचिस्तान में फौजी कार्रवाइयों के प्रशिक्षण शिविर हैं, जो लोगों पर अपने क़ानून एवं नियम लाद रहे हैं और महिलाओं पर अत्याचार व हिंसा कर रहे हैं. लिहाज़ा अमेरिका इन शिविरों को ख़त्म करना चाहता है.

मार्च 2009 की रिपोर्ट, बयान और मौजूदा हालात इस बात की निशानदेही कर रहे हैं कि बहुत जल्द अमेरिकी युद्ध पाकिस्तान का रुख़ करने वाला है और किसी हद तक द्रोण हमलों एवं जंगली इलाक़ों में ऑपरेशन की शक्ल में जारी भी है. अमेरिकी प्रशासन बहुत जल्द पाकिस्तान में तालिबान के ख़िलाफ़ बहुत बड़ा ऑपरेशन शुरू करना चाहता है और इन ऑपरेशनों में उसका निशाना जंगली इलाक़ों के अलावा कोयटा और ब्लूचिस्तान के अन्य इलाक़े भी होंगे.

सीआईए प्रमुख का कहना है कि द्रोण हमले पाकिस्तान नहीं, अमेरिका के बचाव के लिए किए जा रहे हैं, जो हमारी सरकार के मुंह पर एक तमाचा है. जबकि इन हमलों और इनकी प्रतिक्रिया में होने वाले आत्मघाती हमलों से होने वाली क्षति हमारी हो रही है. हमारी शांति व्यवस्था बिगड़ रही है, आर्थिक बदहाली का सामना हमें ही करना पड़ रहा है. सीआईए प्रमुख के इन बयानों से अमेरिका की दोगली नीति बेनक़ाब हो गई है. अगर अमेरिका को इस क्षेत्र में अपना हित प्यारा है और वह यहां हमारी सुरक्षा के लिए नहीं, अपनी सुरक्षा के लिए द्रोण हमले कर रहा है और हमारे ही इलाक़ों में हमारे ही शहरों पर कर रहा है तो फिर हमें अपने ख़िलाफ़ इस युद्ध में नुक़सान उठाने की क्या ज़रूरत है? अमेरिका अपने हितों के इस युद्ध में हमें झोंके रखना चाहता है.

feedback@chauthiduniya.com

देश का पहला इंटरनेट टीवी

तीन महीने में रचा इतिहास

- हिन्दी की सबसे पॉपुलर वेबसाइट
- हर महीने 12,00,000 से ज़्यादा पाठक
- हर दिन 40,000 से ज़्यादा पाठक
- स्पेशल प्रोग्राम-भारत का राजनीतिक इतिहास
- समाचार-राजनीति, खेल, पर्यावरण, मनोरंजन
- संगीत और फ़िल्मों पर विशेष कार्यक्रम
- साई की महिमा

www.chauthiduniya.tv

एफ-2, सेक्टर-11, नोएडा-201301

जो श्रद्धालु सदैव दूसरों की मदद करता है, सच्ची श्रद्धा रखता है, वह मुझे हमेशा अपने पास ही पायेगा.

श्री सद्गुरु साई बाबा के ग्यारह वचन

1. जो शिरडी आएगा, आपद दूर भगाएगा.
2. चढ़े समाधि की सीढ़ी पर, पैर तले दुख की पीढ़ी पर.
3. त्याग शरीर चला जाऊंगा, भक्त हेतु दौड़ा आऊंगा.
4. मन में रखना दृढ़ विश्वास, करे समाधि पूरी आस.
5. मुझे सदा जीवित ही जानो, अनुभव करो, सत्य पहचानो.
6. मेरी शरण आ खाली जाए, हो कोई तो मुझे बताए.
7. जैसा भाव रहा जिस मन का, वैसा रूप हुआ मेरे मन का.
8. भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठा होगा.
9. आ सहायता लो भरपूर, जो मांगा वह नहीं है दूर.
10. मुझ में लीन वचन मन काया, उसका ऋण न कभी चुकाया.
11. धन्य धन्य व भक्त अनन्य, मेरी शरण तज जिसे न अन्य.

हमारे संकल्प कब सिद्ध होंगे

कनुप्रिया

पिछली बार हमने चर्चा की थी कि आजकल थॉट पावर यानी संकल्प शक्ति की चर्चा ज़ोरों पर है. साथ ही, जिन्हें हम साधारण विचार मान और यह सोच कर नकार देते हैं कि यह सब बातें सोचना तो स्वाभाविक है, इन सबके परिणामों को हमने जानने का प्रयास किया था. अब इस अंक में यह जानने की कोशिश करते हैं कि इसे कैसे बदलें? कोशिश करें कि शाम को बच्चे को आने में देर हो जाए तो इस तरह के विचार न आएं कि कहीं कुछ ग़लत तो नहीं हो गया, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई, आजकल तो वक़्त का पता ही नहीं चलता, कहीं फंस तो नहीं गया वगैरह – वगैरह. हालांकि लाख कोशिश करें कि इस तरह के विचार न आए, पर जैसे-जैसे समय बीतेगा ऐसे विचार और तेज़ी से आएंगे. फिर एक समय ऐसा होगा जब डर और संशय के कारण दिमाग काम करना बंद कर देगा और हम स्तब्ध हो जाएंगे. फिर बच्चे के देरी से घर लौटने पर बिना पूछे-समझे उस पर सारा गुस्सा उड़ेल देंगे. परिणामस्वरूप पहले से ही अशांत माहौल और ख़राब हो जाएगा. अब थोड़ा पीछे मुड़ें और देखें कि लाख चाहने के बाद इन विचारों को हम रोक क्यों नही सकते! क्योंकि हमने यह जाना ही नहीं कि इन विचारों को कैसे बदला जाए. पहले यही समझना होगा की ऐसे विचार कहां से आते हैं. हमारे विचार तीन माध्यमों से उत्पन्न होते हैं. पहला स्रोत है जानकारी. जो जानकारी हम अख़बार, रेडियो, टीवी, किताबों, आसपास के लोगों और समाज से प्राप्त करते हैं, वही हमारे विचारों की उत्पत्ति के प्रमुख स्रोत रहते हैं. किसी व्यक्ति से किसी ख़ास काम से मिलें और भले ही वह बेहद शरीफ और नेक दिल हो लेकिन हमारे लिए इसे स्वीकारना नामुमकिन लगता है. अख़बार टीवी और इंटरनेट पर रोज़ यही देखते सुनते हैं कि आज के दौर में किसी पर भरोसा करना ठीक नहीं है. यह सब मीठी मीठी बातें करने वाले लोग धोखेबाज होते हैं. इस जानकारी और मानसिकता के आधार पर हम संशय और अविश्वास की सारी शक्ति इस नए व्यक्ति को दे देते हैं. इस तरह से एक नए सशक्त और सकारात्मक रिश्ते की बजाए संशय और अविश्वास पूर्ण रिश्ता कायम हो जाता है.

जब डर और संशय के कारण दिमाग काम करना बंद कर देगा और हम स्तब्ध हो जाएंगे. फिर बच्चे के देरी से घर लौटने पर बिना पूछे-समझे उस पर सारा गुस्सा उड़ेल देंगे. परिणामस्वरूप पहले से ही अशांत माहौल और ख़राब हो जाएगा.

इस मानसिकता का दूसरा कारण है हमारा पिछला अनुभव. किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति के साथ मेरा पिछला अनुभव कैसा रहा, इसी अनुभव के आधार पर मेरा आज का विचार उत्पन्न होगा. पिछले किसी नकारात्मक अनुभव के कारण एक बार फिर से मेरी मान्यता बन जाएगी कि उस व्यक्ति के साथ मेरा रिश्ता कभी ठीक नहीं होगा. और यह रिश्ता तब तक ठीक नहीं होगा जब तक कि मेरी मान्यता ठीक नहीं होती.

तीसरा कारण हमारी मान्यताएं हैं. जीवन में ऐसे ही चलना चाहिए, जीवन कभी खुशी कभी गम है, एक संघर्ष है, युद्ध है और दुःख के बिना सुख नहीं मिलता जैसी ढेरों मान्यताएं हमारी मानसिकता और दृष्टिकोण को प्रभावित करती हैं. सबसे मुश्किल है इन मान्यताओं को बदलना. इन मान्यताओं हमारा जीवन ही नही बल्कि हमारी कई पीढ़ियां चलती रही हैं. आज ज़रूरत है उन आधारों को बदलने की कि जो हमारे जीवन का आधार रहे हैं. लेकिन विचार तभी बदलेगें जब हमारा जीवन बदलेगा. हालांकि ये मान्यताएं बदलना इतना आसान नहीं है. इन्हें बदलने के लिए सकारात्मक शक्ति को उपार्जित करने की आवश्यकता है. पुरानी मान्यताओं और संस्कारों को जला कर नई और सकारात्मक मान्यताओं को जगह देना ज़रूरी है. यह सब संभव है सिर्फ़ योग एवं ध्यान के माध्यम से. सिर्फ़ योग ही वह तरीका है जब हम अपनी पुरानी हर मान्यता को खाक कर एक शुद्ध और नए जीवन की शुरुआात कर सकते हैं.

आइए ख़ुद को जानने की आध्यात्म की इस यात्रा में अपनी असली पहचान के साथ योग में बैठ लग्न की अग्न में सारे पुराने संस्कारों को जला एक नए जीवन की शुरुआत करें. शांति में बैठ सुबह और शाम सिर्फ़ पांच मिनट का योग बहुत जल्दी विचारों में परिवर्तन लाएगा. आप प्रयास तो करके देखें.

ओम् साई राम

योग कैसे करें ... जानेगें अगली बार

feedback@chauthiduniya.com

सबका मालिक एक श्रद्धालुओं के दिल में बसते साई

भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठा होगा.

साई एक ऐसा नाम है, जिसके स्मरण से ही रोम-रोम खिल उठता है. शरीर में एक ऐसा एहसास होता है, मानो हर खुशी हमारे कदमों में है. दुखियों की पीड़ा को हरने वाले श्री साई बाबा कहते हैं कि मैं मानवता की सेवा के लिए पैदा हुआ हूं और मेरा उद्देश्य शिरडी को ऐसा स्थल बनाना है, जहां पर किसी व्यक्ति से किसी भी प्रकार का भेदभाव न किया जाए. चाहे वह गरीब हो या अमीर, सबको एक ही तराजू में तौला जाए. सब मिलकर रहें और एक-दूसरे को प्यार बांटते चलें. बाबा का कहना है कि मैं शिरडी में रहता हूं, लेकिन जो मुझे सच्चे दिल से याद करता है, मैं उसी भक्त के दिल में वास करता हूं. जो भक्त सदैव दूसरों की मदद करता है, सच्ची श्रद्धा रखता है, वह मुझे हमेशा अपने पास ही पाएगा. बाबा कहते हैं कि जो भक्त अपने दुःखों को भूल कर दूसरों के दुःखों को कम करने की हर प्रकार से कोशिश करता है, उसे खुशी देने की अपार कोशिश करता है, ईश्वर भी उसी के साथ होता है. अगर आप पशुओं और मानवों से प्रेम करोगे, तो मुझे पाने में कभी असफल नहीं होगे.

साई तो प्रभु का ही एक अवतार थे, जिन्होंने इस धरती पर मनुष्यों को जीने की सही राह दिखाने के लिए अवतार लिया. साई कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति दुःखी है तो वह एक बार सच्ची श्रद्धा से शिरडी में आकर देखे, उस व्यक्ति के हर कष्ट दूर हो जाएंगे. साई बाबा के चमत्कारों की चर्चा तो बहुत होती है, परंतु ख़ुद बाबा इन बातों को महत्व नहीं देते. वह सदैव ही भक्तों को आश्वासन दिया करते थे कि जब यह पार्थिव देह न होगी, तब भी तुम मुझे अपने पास ही पाओगे. साई का कहना है कि जो व्यक्ति अहंकार में जीता है, मैं उस व्यक्ति को कभी नहीं मिल सकता. अगर मुझे पाना चाहते हो तो पहले तुम मेरे पास सच्ची श्रद्धा से आओ, ख़ुद को समर्पित करो. फिर देखो तुम मुझे जब भी याद करोगे, मैं तुम्हारे पास ही रहूंगा और तुम्हारे हर कष्ट को दूर कर दूंगा. बाबा का यह भी मानना है कि जो व्यक्ति अपने दुःखों को सोच-सोच कर दुःखी होता है, वह संसार में कभी आगे नहीं बढ़ सकता है. अतः व्यक्ति को भूतकाल का साथ छोड़कर भविष्य की ओर ध्यान देना चाहिए. जहां सुख मिले, उस व्यक्ति को अपने कदम वहीं बढ़ाने चाहिए, जिससे उसका जीवन सुखद बन सके. जीवन में जो हुआ सो हुआ, उसे भूलने की कोशिश कर ईश्वर का नाम लेकर एक नए जीवन की शुरुआत करें. वैसे भी जो प्रभु को सच्ची श्रद्धा से नहीं मानते, प्रभु भी उनके साथ नहीं होते. साई बाबा कहते हैं कि एक बार मुझे दिल से याद करो, तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जाएंगे. हिंदू, पारसी, मुस्लिम, ईसाई और सिख...हर धर्म और पंथ के लोगों ने साई को आदर्श बनाया और उनकी राह पर चले. साई प्रकाशपुंज थे, ईश्वर का अवतार थे. उन्होंने लोगों को धर्म एवं जाति की खाई में गिरने से बचाया और एक छत तले इकट्ठा किया. आज साई बाबा भले ही न हों, लेकिन वह आज भी श्रद्धालुओं के दिल में रहते हैं और प्यार बांटने का उनका संदेश असंख्य भक्तों की शिराओं में अब तक दौड़ रहा है और कह रहा है कि मुझे सदा जीवित जानो, अनुभव करो और सत्य को पहचानो. मेरी शरण में जो श्रद्धालु आता है, वह कभी खाली हाथ नहीं लौटता. अतः साई के गुण गाते चलो, हर कष्ट को दूर भगाते चलो.

ओम साई राम.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

अल्लन एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार से आता है. पिता कस्बे में दुकान चलाकर परिवार को पालते हैं और दोनों बेटों को पढ़ाते हैं.

मज़हब पर भारी परिवेश

अनंत विजय

अचानक एक दिन एक मित्र ने फोन कर बताया कि पत्रकार जैग़म इमाम का एक उपन्यास आया है और वह आपसे मिलकर अपना उपन्यास देना चाहते हैं. फिर एक दिन जैग़म मेरे दफ्तर आए और उपन्यास दे गए. यह जैग़म से मेरी पहली मुलाक़ात थी. फिर काफी दिनों बाद मैंने फोन कर उन्हें बेहतर उपन्यास लिखने के लिए बधाई दी. दोज़ख़, जैग़म इमाम का पहला उपन्यास है. यह उपन्यास बनारस की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है. इसका नायक अल्लन एक ऐसा किशोर है, जिसके लिए धर्म और उसकी पाबंदियां बहुत मायने नहीं रखतीं. सुबह उठकर उसके कान में अजान और मंदिर की घंटियों की आवाज़ एक साथ जाती है. मां–बाप की तमाम नसीहतों के बावजूद उसका मन मंदिर में रमता है, क्योंकि खेलने के लिए सभी वहीं जुटते हैं. इसके पीछे मजहब से विद्रोह जैसी कोई बात नज़र नहीं आती है, बल्कि सामने आता है एक ऐसा परिवेश, जो मजहब के नाम पर बांटता नहीं, बल्कि जोड़ता है. अल्लन की प्रेमिका नीलू उसे मंदिर में मिलती है तो वह मस्जिद क्यों जाए, क्योंकि किशोर मन का प्रेम ऐसा होता है, जो सारे बंधनों को ढहाकर सिर्फ़ अपने प्रेम को ही पाना चाहता है.

अल्लन एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार से आता है. पिता कस्बे में दुकान चलाकर परिवार को पालते हैं और दोनों बेटों को पढ़ाते हैं. बड़ा बेटा पढ़–लिखकर इतना समझदार हो जाता है कि शादी के बाद अब्बा–अम्मी उसे बोझ लगने लगते हैं. बेहद सामान्य सी परिस्थिति में उपन्यासकार ने परिवार के इस लाडले को अपनी बीवी के हाथों में खेलते हुए दिखाया है और फिर उसे परिवार से अलग कर दिया है. उसे न तो अपने मां–बाप की चिंता है और न ही अपने छोटे भाई की. वह तो अपनी बीवी का गुलाम बन चुका था. इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, गांव में बहुधा ऐसा होता है. बड़े भाई के हाथों अपने मां–बाप को ज़लील होते देखकर अल्लन के मन में भाई के प्रति नफ़रत पैदा हो जाती है, जो कभीकभार विस्फोटक भी हो जाती है. भाई के घर छोड़ कर चले जाने के बाद तनहा किशोर अल्लन को मंदिर में जाना और पुजारी से बातें करना अच्छा लगता है. उसे पता भी नहीं चला कि कब उसका दिल नीलू पर आ गया. लेकिन छोटे शहरों में जिस तरह का प्रेम होता है, वही हुआ. वह प्रेम ही करता रह गया और नीलू की शादी किसी और से हो गई.

इस बीच अल्लन की अम्मी की मौत हो जाती है और अपनी मां से बेहद प्यार करने वाला अल्लन जब यह देखता है कि उसकी जान से प्यारी मां को लोग क़ब्रिस्तान में दफ़ना रहे हैं तो उसका मन विद्रोह कर उठता है. वह चाहता है कि अपने अब्बा से कह दे कि अम्मी को क़ब्र में न गाड़ें. इतने बड़े घर में रहने वाली अम्मी गड्ढे में कैसे रह पाएंगी. लेकिन सामाजिक मान्यताओं के दबाव में वह कुछ कह नहीं पाता है. जब कुछ दिनों बाद वह अपने दोस्त मनोजवा के साथ अपनी मां की क़ब्र पर जाता है तो उसका दोस्त भी उसके मिजाज़ की बात ही कहता है, हम लोगों में ठीक होता है कि अगर कोई मर जाए तो जला दो और उसके बाद राख को पानी में बहा दो, छुट्टी. सड़ने–गलने के लिए मिट्टी में छोड़ना ठीक नहीं है. अल्लन इस कशमकश से गुज़र ही रहा था कि अचानक उसके पिता ने उसे इस बात की इत्तिला दी कि उसके बड़े भाई आलम घर आ रहे हैं.

सैयद ज़ैग़म इमाम

किशोर अल्लन विद्रोही हो जाता है और बड़े भाई के आने पर उससे बात तक नहीं करता, उसे खरी–खोटी सुना भी देता है. उसे इस बात की बेहद तक़लीफ़ थी कि अम्मी को जब सुपुर्द–ए–ख़ाक किया जा रहा था तो आलम क्यों नहीं आए. अल्लन के विद्रोही तेवर देखकर आलम वापस चले जाते हैं, लेकिन इसके बाद अल्लन के पिता उसकी इतनी लानत–मलामत करते हैं कि उसे लगता है कि दुनिया दोज़ख़ है और इससे मुक्त हो जाना चाहिए. अपने आप को मुक्त करने के लिए अल्लन उसी गंगा को चुनता है, जो उसे बचपन से आकर्षित करती थी और उसमें डुबकी लगाकर बेहद ख़ुश होता था. दो दिनों तक जब अल्लन का पता नहीं चलता तो उसके पिता उसे खोजते–खोजते बनारस पहुंचते हैं, जहां बीएचयू के मुर्दाघर में उसकी लाश मिलती है. पहाड़ जैसे दु:ख के बोझ तले दबे बूढ़े बाप पर बच्चे की चाहत और उसके प्रति प्यार मजहब पर भारी पड़ता है और बजाय बच्चे को दफनाने के वह मणिकर्णिका घाट पर जला कर उसका अंतिम संस्कार करते हैं. इस पूरे प्रसंग को उपन्यासकार ने बेहद ही संजीदगी से उठाया है और दु:ख की ज्वाला में जल रहे बाप के मनोविज्ञान को इस क़दर उभारा, जो लेखन की गंभीरता और परिपक्वता को ज़ाहिर करता है. हाशिम मियां अपने बेटे अल्लन की राख लेकर अपनी बीवी की क़ब्र पर पहुंचते हैं और उसके सीने पर छोटा सा गड्ढा खोदकर उसमें राख दबाकर कहते हैं, लो संभालो, अपने अल्लन को. इस जगह संवेदना का एक ऐसा उत्स है, जिसे जैग़म बेहद शिद्दत से संभाल ले जाते हैं.

सत्ताइस साल की उम्र में ही लेखक जैग़म इमाम की लेखनी में एक प्रौढ़ता दिखाई देती है, जिसमें सामाजिक परिवेश मजहब पर भारी पड़ता है. एक ऐसा बच्चा, जो बनारस की संस्कृति में पढ़ा और सोलह–सत्रह साल की उम्र में अपनी जान दे देता है, उसके लिए मजहब कहीं कोई मायने नहीं रखता था. उसके लिए तो मायने रखती थी पंडित जी के साथ बतकही, नीलू के साथ चुहलबाज़ी, मनोजवा के साथ चकल्लस और मां–बाप की मोहब्बत. इसमें कोई संदेह नहीं कि शानी और राही की तरह जैग़म को भी अपने अंचल से संवेदनात्मक लगाव है और उसके अनुरूप ही भाषा का सर्जनात्मक उपयोग उपन्यास में है, लेकिन दोज़ख़ का कथ्य आंचलिक न होकर व्यापक है. विवरणों की जो सजीवता जैग़म के उपन्यास में दिखाई देती है, वह उसके एक अच्छे उपन्यासकार के रूप में हिंदी साहित्य के दरवाजे पर दस्तक देती प्रतीत होती है. दोज़ख़ को इस रचनात्मक संभावना की परिणति के रूप में रेखांकित किया जा सकता है.

हिंदी उपन्यास के इतिहास पर अगर नज़र डालें तो हम यह पाते हैं कि वहां मुस्लिम जीवन का चित्रण बेहद कम हुआ है. गुलशेर खां शानी के पहले प्रेमचंद, यशपाल, वृंदावनलाल वर्मा आदि ने अपने सीमित अनुभवों के आधार पर मुस्लिम जीवन पर लिखा. शानी इस बात को बेहद शिद्दत से महसूस भी करते थे और आपसी बातचीत के अलावा सार्वजनिक तौर पर भी इस बात को कहते थे. यह एक सच्चाई भी है. शानी के काला जल, राही मासूम रज़ा के आधा गांव, मंजूर एहतेशाम के सूखा बरगद, असगर वजाहत के सात आसमान और अब्दुल बिस्मिल्लाह की झीनी झीनी बीनी चदरिया के अलावा कोई अहम नाम सूझता नहीं है. इन उपन्यासों में मुस्लिम समाज के विभिन्न पहलुओं पर लिखा गया है.

रचनाकार को जाति या समुदाय विशेष में बांटना उचित नहीं होगा, लेकिन अगर कोई समाज साहित्य में हाशिए पर हो तो उस पर जमकर विमर्श होना ही चाहिए, ताकि वह समुदाय और समाज ख़ुद को हाशिए पर महसूस न करे. शानी का काला जल शिल्प की दृष्टि से अद्‌भुत उपन्यास है, जबकि राही के आधा गांव का फलक अपने समकालीन उपन्यासों से कहीं ज़्यादा व्यापक है. कहना न होगा कि अब भी मुस्लिम समाज, उसकी परंपराओं, उसकी रूढ़ियों, उसकी मान्यताओं पर नहीं के बराबर लिखा जा रहा है. मुस्लिम युवा मन की बेचैनी या फिर उसके मनोविज्ञान पर, अगर जैग़म के इस उपन्यास को छोड़ दें तो, हाल में कोई किताब आई हो, ऐसा ज्ञात नहीं है.

(लेखक आईबीएन–7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

पुस्तक अंश

मुन्नी मोबाइल

गतांक से आगे

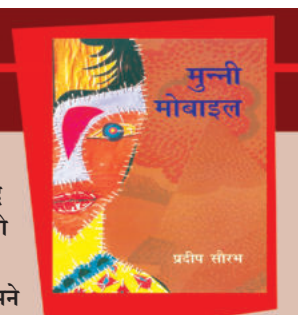

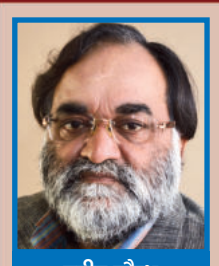

प्रदीप सौरभ

घर पर वैचारिक मतभेद ज़्यादा तीखे हो गए तो आनंद भारती यकायक घर छोड़कर दिल्ली के लिए निकल पड़े. जाने से पहले मानसी से भी नहीं मिले. कुछ नहीं कहा उसे. यही ख़ास अंदाज़ है आनंद भारती का. यही मिजाज़ है उनका. अपनों को भी हर वक़्त अपनेपन का एहसास दिखा सकें, अपना दर्द बांट सकें, ऐसा उनका स्वभाव नहीं है.

बस, एक हफ्ते के बाद किसी के द्वारा एक पर्ची लिखकर भिजवा दी थी, जिस पर दिल्ली में ठहरने वाले स्थान का पता था और खत लिखने का आदेश. आग्रह कदापि नहीं. कुछ शब्द आनंद भारती के शब्दकोश में कोई मायने नहीं रखते. मानसी उन्हें पत्र लिखती. उसके कहने का ढंग, भाषा और अभिव्यक्ति सब कुछ अद्‌भुत होता. हर खत बेहद लंबा, बहुत ख़ूबसूरत. उसके संबोधन भी सबसे हटकर होते. कभी साथी मेरे, मेरे गीत, साथी, मानसी गुरु, मेरे सखा...न जाने कितने शब्द थे उसके पास. हर खत अपने आप में एक कहानी होता. आनंद आज भी सोचते हैं कि शब्दों और भावों का जखीरा था मानसी के पास. वे खत आनंद की ताक़त थे उन दिनों. परिस्थितियों से जूझने की हिम्मत मिलती थी उनसे. माता–पिता नाराज़ रहते थे. ख़ुद को स्थापित करने के लिए संघर्ष का रास्ता अभी लंबा था... आनंद भारती याद कर रहे थे.

मानसी के खत किसी ताबीज़ की तरह वह हमेशा अपने साथ रखते. एक जगह से दूसरी जगह जाने में समय अंतराल लंबा होता तो वह बस में बैठ उन खतों को पढ़ते रहते. एक बार...दो बार...न जाने कितनी–कितनी बार. हर बार हर शब्द एक अलग

अर्थ देता और पीड़ा और निराशा के पलों के बीच भी आनंद भारती जीवंत हो जाते. आनंद भारती सोच रहे थे कि यदि उन पत्रों को सहेज कर वह छपवा पाते तो शायद एक मुकम्मल उपन्यास तैयार हो जाता. शुरू–शुरू में आनंद भारती को कई खत जुबानी याद थे. आज सोचना चाहते हैं तो सब कुछ गड्डु–मड्डु सा हो गया है. वह सोच रहे हैं कि यदि मानसी पहले जैसा कोई खत अभी उन्हें लिखती तो शायद यही कहती...

साथी मेरे, ज़िंदगी के तमाम रास्ते गुजर गए. तुमने बहुत कुछ पा लिया... नाम, पैसा, शोहरत... वक़्त के चप्पे–चप्पे को थामना चाहते हो तुम. भला ऐसा होता है कहीं? वक़्त कितनी बड़ी करवट ले चुका है और आप उसका रेशा– रेशा खुरच कर पीछे डूब चुके सूरज की परछाईं को पकड़ना चाह रहे हैं. आप तो कभी ऐसे न थे, मेरे दोस्त. वक़्त से आगे निकल जाने का जुनून था आपमें और आप निकल भी गए. इतनी तेज़ी से कि मैं दहलीज पर ही खड़ी रह गई. उस दहलीज पर, जहां आगे का रास्ता सिर्फ़ आपका अपना है. पगडंडी इतनी छोटी है कि दो के लिए जगह ही नहीं और पीछे यादों का अंधेरा है. वहां लौटने में मुझे डर लगता है. आपके जाने के बहुत साल तक उसी दहलीज पर मैं आपके उजाले के लिए दुआओं का दीप जलाती रही... फिर आहिस्ता–आहिस्ता उस गिरफ़्त से बाहर निकली तो पाया कि दुनिया बहुत आगे निकल चुकी है. समझ नहीं पाई कि अगला पड़ाव कहां होगा...पर वक़्त का अपना इतिहास होता है और अपना भूगोल. फिर कोई रास्ता बहुत दूर तक अकेला नहीं जा सकता ना. बस, एक चौराहा मैंने भी चुन लिया. पर मेरे साथी, शब्दों के अर्थ भले ही अब बदल गए हैं, दिल में दुआओं की रोशनी आज भी वही है. मेरी हर प्रार्थना में आप रहते हैं, सदैव...आमीन.

अगले अंक में जारी...

प्लेगियरिज़्म और कॉपीराइट क़ानून की उलझन

27 जून के दैनिक हिंदुस्तान में शब्द पृष्ठ के अंतर्गत युवा स्वर स्तंभ में एक स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया है कि 20 जून के अंक में युवा स्वर के तहत प्रकाशित कविता खूंटी में टंगी ज़िंदगी पूर्व में सितंबर 2001 की कादंबिनी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी थी. दैनिक हिंदुस्तान को यह सूचना कविता के मूल रचनाकार बृजेश कुमार त्यागी ने दी. किसी दूसरे रचनाकार की रचना को अपना बताने या चोरी करने के कृत्य को अंग्रेजी में प्लेगरिज़्म कहते हैं. अभी तक इस संबंध में स्पष्ट क़ानून का अभाव है. हिंदुस्तान में प्रकाशित स्पष्टीकरण में भी कविता को चुराकर अपने नाम से प्रकाशित करवाने वाले शख्स विजय कुमार सिंह की केवल निंदा की गई है. कुछ दिनों पहले प्रख्यात उपन्यासकार चेतन भगत ने भी थ्री इडियट्स के प्रोड्यूसर पर अपने उपन्यास फाइव प्वाइंट के कुछ अंशों की चोरी का आरोप लगाया था.

हालांकि इन घटनाओं को हम कॉपीराइट क़ानून से जोड़ कर नहीं देख सकते, क्योंकि प्लेगरिज़्म और कॉपीराइट में भिन्नता है. फिर भी दोनों के बीच चोली–दामन का रिश्ता तो ज़रूर है. सच कहा जाए तो दोनों एक–दूसरे से अलग रहकर भी एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं. कॉपीराइट का शाब्दिक अर्थ है कलाकार या लेखक का स्वयं के सृजन पर मालिकाना हक़. जब कॉपीराइट क़ानून के तहत संरक्षित रचना का किसी के द्वारा मूल रचनाकार की जानकारी या मर्जी के बिना इस्तेमाल किया जाता है तो उसे कॉपीराइट क़ानून का उल्लंघन कहा जाता है.

इंटरनेट के जमाने में कॉपीराइट एक्ट की प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है, क्योंकि आजकल सबसे ज़्यादा कॉपीराइट क़ानून को तोड़ा जा रहा है. कट–पेस्ट का चलन इस कदर बढ़ गया है कि मौलिकता किसी अंधेरे के गर्त में चली गई है. बावजूद इसके इसकी फ़िक्र किसी को नहीं है. छपास की भूख के आगे सभी तरह का नशा कमतर है. पड़ताल से ज़ाहिर है कि कोई भी प्रकाशक रचनाओं की मौलिकता का सत्यापन नहीं करता. फ़िल्म इंडस्ट्री की हालत इस संदर्भ में सबसे ज़्यादा ख़राब है. गीत, संगीत और स्क्रिप्ट की चोरी यहां बेहद ही आम है. फ़िल्म इंडस्ट्री के नामचीन रचनाकार भी इस तरह का कृत्य करने से गुरेज नहीं करते. किसकी रचना चोरी हुई या फिर किसकी रचना कब बिना मूल लेखक की अनुमति के चुपके से फिसल कर बाज़ार में आ गई, पता ही नहीं चल पाता. बृजेश कुमार त्यागी या उनके जैसे दूसरे जागरूक लेखक या कलाकार ने चोरी की जानकारी दे दी या कॉपीराइट क़ानून के उल्लंघन

आमतौर पर कॉपीराइट के स्थानांतरण से पहले फ़िल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक, कलाकार या लेखक के साथ एक समझौतानामा पर हस्ताक्षर करता है. इस समझौतानामा द्वारा कलाकार या लेखक अपनी रचना का कॉपीराइट फ़िल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक को दे देते हैं. जबकि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि रचना पर मालिकाना हक़ हमेशा रचनाकार के पास बना रहे और भविष्य में मिलने वाली रॉयल्टी में भी उसे आनुपातिक हिस्सा मिलता रहे, किंतु भारत में अभी ऐसा नहीं हो पा रहा है.

के बारे में बता दिया तो ठीक है, अन्यथा गंदा है पर धंधा है वाली तर्ज पर सब कुछ बाज़ार में चल रहा है.

1957 में बने कॉपीराइट एक्ट में सबसे बड़ी ख़ामी यह है कि वह मूल रचनाकारों को न्याय नहीं दिला पा रहा है. संगीतकार, गीतकार, लेखक एवं अन्यान्य कलाकार अपनी कला की सही क़ीमत पाने से महरूम रह जाते हैं. उनकी कला को प्रोड्यूसर और प्रकाशक औने–पौने दामों में ख़रीद लेते हैं और फिर उसी कला या रचना के ज़रिए लाखों–करोड़ों कमाते हैं. बानगी के तौर पर शकील बदायूंनी द्वारा लिखित और गुलाम मोहम्मद द्वारा संगीतबद्ध किए गए–भगवान तेरी दुनिया में इंसान नहीं है, गीत से फ़िल्म के प्रोड्यूसर ने तो लाखों कमाए, पर आश्चर्यजनक रूप से इस गीत के संगीतकार गुलाम मोहम्मद की मौत बदहाली में हुई. गुलाम मोहम्मद की तरह प्रसिद्ध संगीतकार खेमचंद प्रकाश की पत्नी की मौत भी मुंबई की सड़कों पर भीख मांगते हुई थी. एक फ़िल्म में बहुत से कलाकार मसलन संगीतकार, गीतकार एवं लेखक आदि काम करते हैं और उनके द्वारा सृजित रचना फ़िल्म बनने के बाद उनकी नहीं रह जाती है. समझौते के माध्यम से उनकी कला पर अधिकार फ़िल्म प्रोड्यूसर का हो जाता है. इसी तरह लेखक या कवि की रचना किसी अख़बार या पत्रिका में छपने के बाद उसकी नहीं रह जाती है. (अधिकांश प्रकाशकों के नियम ऐसे रहते हैं कि रचना के प्रकाशन के बाद उस पर कॉपीराइट प्रकाशक का हो जाता है)

आमतौर पर कॉपीराइट के स्थानांतरण से पहले फ़िल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक, कलाकार या लेखक के साथ एक समझौतानामा पर हस्ताक्षर करता है. इस समझौतानामा द्वारा कलाकार या लेखक अपनी रचना का कॉपीराइट फ़िल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक को दे देते हैं. जबकि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि रचना पर मालिकाना हक़ हमेशा रचनाकार के पास बना रहे और भविष्य में मिलने वाली रॉयल्टी में भी उसे आनुपातिक हिस्सा मिलता रहे, किंतु भारत में अभी ऐसा नहीं हो पा रहा है. फ़िलहाल भारत में कॉपीराइट एक्ट में संशोधन का प्रस्ताव है, लेकिन यह संशोधन सिर्फ़ गीत एवं संगीत से जुड़ा हुआ है. इस मामले में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य भारत से काफी बेहतर है. आस्ट्रिया एवं जर्मनी में कॉपीराइट एक्ट से जुड़ी नियमावली कलाकारों और लेखकों के अनुकूल हैं. वहां मूल कलाकार एवं लेखक को ताउम्र उसकी रचनाओं के लिए रॉयल्टी मिलती है. इस तरह के क़ानून से कलाकारों और लेखकों का उनकी रचनाओं पर मालिकाना हक़ हमेशा बना रहता है. हो सकता है कि कलाकारों और लेखकों को इस तरह के अधिकार देने की वकालत करना समझौते की स्वतंत्रता का हनन हो, परंतु इतना तो स्थापित सत्य है कि कलाकारों और लेखकों को उनकी रचनाओं पर हमेशा के लिए अधिकार देने से उनका आर्थिक शोषण काफी हद तक रुक सकता है.

सतीश सिंह
feedback@chauthiduniya.com

ऑस्कर मोबाइल मामलों का नेतृत्व करने वाले करण वर्मा ने कहा कि किफ़ायती क़ीमत पर गुणवत्ता मुहैया कराने के लिए ऑस्कर के सभी फंक्शनों की जांच की जाती है.

छुट्टियां बनाएं मज़ेदार

डाक बंगला सीरीज ने नए बोर्ड गेम्स बाज़ार में उतारे हैं. इनमें बोर्ड, बैकगमौन एवं शतरंज सहित कई खेल शामिल हैं. ये गेम्स विशेष रूप से पोर्टसाइड कैफे दिल्ली एवं पुणे में उपलब्ध हैं और विशेष वेजीटेबल टैंड लेदर से हाथों से बनाए गए हैं.

रविवार के दिन अगर आपका मन घर के कामों में न लगे और न किसी रिश्तेदार या मित्र से मिलने की इच्छा हो तो आप समय काटने के लिए कोई जरिया खोजने लगते हैं. ऐसे में अगर आपको कुछ दिलचस्प खेल खेलने को मिल जाएं, तो संडे वंडरफुल बन सकता है. आपकी छुट्टियों को रुचिकर बनाने के लिए डाक बंगला सीरीज ने नए बोर्ड गेम्स बाज़ार में उतारे हैं. इनमें बोर्ड, बैकगमौन एवं शतरंज सहित कई खेल शामिल हैं.

ये गेम्स विशेष रूप से पोर्टसाइड कैफे दिल्ली एवं पुणे में उपलब्ध हैं और विशेष वेजीटेबल टैंड लेदर से हाथों से बनाए गए हैं. रंगीन और खूबसूरत डिजाइन वाले इन गेम्स के सभी पीस अलग-अलग ख़ास अंदाज़ में नज़र आते हैं. इन्हें डिजाइन करने वाले का हुनर साफ़ दिखाई देता है. यह देखने में साधारण, पर आकर्षक है और पोर्टेबल भी. आप इन्हें आसानी से इधर-उधर लेकर जा सकते हैं. ये जगह भी कम लेते हैं और इन्हें बुक रैक/सेल्फ या स्टडी टेबल पर रखा जा सकता है. ऐसे नवीनतम खेलों का कॉन्सेप्ट लाने वाले बॉबी अग्रवाल कहते हैं कि उन्हें चमड़े से बेहद लगाव था. वह शुरू से ही चमड़े के डिजाइन और अन्य उत्पाद बनाने के प्रति उत्सुक थे.

करियर के शुरुआती दिनों में बॉबी ने रगसैक नामक फुटवियर रेंज डिजाइन की थी. फिर उन्होंने लोगों के खाली वक्त को मजेदार बनाने के लिए एक नए कॉन्सेप्ट पर गेम्स तैयार किए. आप चाहे अपना खाली समय मजेदार बनाना चाहते हों या दोस्तों का, गिफ्ट करें या घर लाएं डाकबंगला सीरीज के गेम्स. ये दिल्ली में लाडो सराय स्थित पोर्टसाइड कैफे फ्लैगशिप स्टोर में उपलब्ध हैं.

ऑस्कर के नए हैंडसेट

मोबाइल बनाने वाली कंपनी ऑस्कर ने सेल्युलर फोन की एक नई रेंज भारतीय बाज़ार में उतारी है. कंपनी की योजना है कि शुरू में ये मोबाइल पहले उत्तर और पूर्वी भारत में पेश किए जाएं, जहां उसकी स्थिति मजबूत है. बाद में इसे पूरे देश में उतारा जाएगा. कंपनी का मानना है कि 25 सालों से वह उपभोक्ताओं को सही क़ीमत पर कई खासियतों वाले प्रोडक्ट उपलब्ध करा रही है. ऑस्कर ग्रुप के चेयरमैन सतीश वर्मा का कहना है कि दूरसंचार के क्षेत्र में उनका प्रवेश उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद उचित क़ीमत पर मुहैया कराने के नज़रिए से हुआ है. कंपनी चाहती है कि वह भारत में सबसे किफायती हैंडसेट पेश करे और उसमें फोन की खासियत और क़ीमत के अनुपात का ख्याल रखा जाए. इस समय क़रीब 50 प्रतिशत भारतीय ग्राहक अल्ट्रा लो कॉस्ट यानी बेहद कम क़ीमत वाले हैंडसेट का उपयोग करते हैं. इसलिए कंपनी को इस क्षेत्र में अपने लिए अच्छा भविष्य नज़र आया है. वैल्यू फॉर मनी बाज़ार वर्ग में कंपनी का अच्छा रिकॉर्ड है. कंपनी अर्द्धशहरी और ग्रामीण बाज़ार में अपनी अच्छी उपस्थिति बनाने की कोशिश करेगी. यहां ग्राहकों और ऑपरेटरों की प्रमुखता तेजी से बढ़ रही है.

ब्रांड की विस्तार योजनाएं बताते हुए कंपनी के कार्यकारी निदेशक सुरेश वाधवानी ने कहा कि पहले साल के अंत तक कंपनी 250 करोड़ रुपये के कारोबार से उत्तर और पूर्वी भारत में एक लाख मोबाइल प्रति माह बेचने की उम्मीद करती है. इसके बाद 15-20 प्रतिशत प्रति वर्ष की रफ्तार से बढ़ोत्तरी का लक्ष्य होगा. कंपनी ने पांच वर्षों में 1000 करोड़ रुपये के कारोबार का लक्ष्य रखा है. ऑस्कर मोबाइल मामलों का नेतृत्व करने वाले करण वर्मा ने कहा कि किफायती कीमत पर गुणवत्ता मुहैया कराने के लिए ऑस्कर के सभी फंक्शनों की जांच की जाती है. कंपनी के सभी हैंडसेट मॉडल उचित मूल्य पर अतिरिक्त खासियतों की पेशकश करते हैं, ताकि ग्राहकों को उच्चस्तरीय संतुष्टि मिल सके. इसके लिए अतिरिक्त खासियत मुहैया कराने पर विशेष जोर दिया जाता है. इनमें बेहतर नेटवर्क कनेक्टिविटी और उत्कृष्ट ऑडियो आउटपुट है, जिससे फोन का उपयोग भीड़भाड़ वाले क्षेत्रों, जहां शोर का स्तर बहुत ज़्यादा हो, में भी किया जा सकता है. फोन के मॉडल अपग्रेड किए गए हैं, परिणामस्वरूप सिग्नल और कॉल कटने की आशंका कम रहती है. इसमें मल्टीमीडिया मॉडलों में वीडियो विदाउट ब्रेक या जर्क की विशेषता है. इसमें 1800-2000 एमएएच बैट्री का इस्तेमाल किया गया है, जो लंबे समय तक चलती है. इसलिए फोन के कुछ मॉडल 30 दिनों तक स्टैंडबाई रह सकते हैं. सभी ऑस्कर मोबाइल हैंडसेट फोन दो सिम वाली जीएसएम कनेक्टिविटी को सपोर्ट करते हैं. इनके साथ एक साल की वारंटी दी गई है. इनके बेस मॉडल एन में वाइब्रेशन स्पीकर है. यह हैंडसेट बेहद तेज प्रोसेसर पर आधारित है और फ्रंट व बैक कैमरे के साथ मिलता है. एन-1 के अलावा ज़्यादातर मोबाइल ढेर सारे मल्टीमीडिया विकल्पों से भरे हैं. इनमें एफएम रेडियो, एमपी-3 व एमपी-4 प्लेयर, विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइटें और 1.3 मेगा पिक्सल कैमरा आदि शामिल हैं. बिक्री के बाद सेवा के लिए 250 सर्विस सेंटरों का नेटवर्क देश भर में उपलब्ध है. कंपनी की योजना है कि वह जल्द ही 10 नए हैंडसेट बाज़ार में उतारे, जिनकी क़ीमत 1700 से 4500 रुपये के बीच हो. सभी मॉडलों में कुछ ऐसी विशेषताएं होंगी, जो अब तक अन्य किसी ब्रांड में इस क़ीमत पर उपलब्ध न हुई हों. इस सीरीज में अभी तक छह मॉडल पेश किए जा चुके हैं.

नए स्टाइल से नेटवर्किंग

ब्रोकेड ने अलाइंस पार्टनर नेटवर्क (एपीएन) के लिए टेक्नोलॉजी केंद्रित चैनल पार्टनर स्पेशलाइजेशन कोर्स शुरू किया है, जो स्पेशलाइजेशन स्टैंडर्ड इंडस्ट्री सर्टिफिकेशन और ब्रोकेड द्वारा प्रमाणित क्वालीफिकेशन पर आधारित है. इसका उद्देश्य नेटवर्किंग टेक्नोलॉजी में एपीएन विशेषज्ञों को दक्ष बनाना है, जिससे चैनल पार्टनर्स को उपभोक्ता की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करने में मदद मिल सके.

शुरुआत में ब्रोकेड स्टोरेज एरिया नेटवर्क (एपीएन) और सैन/आईपी इथरनेट प्रोडक्ट पोर्टफोलियो उपलब्ध करने वाले चैनल पार्टनर्स के लिए नेटवर्क इंफ्रास्ट्रक्चर पार्टनर सर्टिफिकेशन पर विचार करेगी. साथ ही इस साल वर्चुअलाइज्ड फैब्रिक्स पार्टनर स्पेशलाइजेशन और एप्लीकेशन डिलीवरी पार्टनर स्पेशलाइजेशन भी पेश करेगी. उक्त स्पेशलाइजेशन कोर्स क्वालीफाई करने वाले चैनल पार्टनर्स को अनेक फायदे मिलेंगे, जिनमें से प्रमुख निम्नवत हैं:

-डेडीकेटेड प्री-सेल सपोर्ट.
-महत्वपूर्ण इकाई और प्रयोगशाला तक पहुंच.
-विशेष मान्यता प्राप्त करने के अवसर.
-लीड असाइनमेंट करने का अवसर.

इसके अलावा क्वालीफाइड पार्टनर्स को नगद पुरस्कार के साथ-साथ छूट योजनाओं का भी फायदा मिलेगा. इस प्रशिक्षण में कम या शून्य खर्च, मार्केटिंग डेवलपमेंट फंड (एमडीएफ) के इस्तेमाल आदि के जरिए. एपीएन प्रोग्राम के अहम बिंदुओं पर प्रकाश डाला जाएगा. इस संबंध में आईडीसी में इंफ्रास्ट्रक्चर चैनल्स प्रैक्टिस में प्रोग्राम डायरेक्टर क्रिस ई ने बताया कि आज पार्टनर्स पर ग्राहकों के समक्ष अपनी अहमियत और क़ीमत साबित करने का दबाव पहले से कहीं ज़्यादा है. प्रमाणन आधारित स्पेशलाइजेशन पार्टनर्स को अपनी अंदरूनी क्षमता एवं ज्ञान बढ़ाने और ग्राहकों की ज़रूरतें पूरी करने के लिए विशेषज्ञता मुहैया कराने में भरपूर मदद करेगा.

आज के सर्विस आन डिमांड कंप्यूटिंग वाले माहौल को ग्राहक तेजी से अपना रहे हैं. ऐसे में डाटा को सुरक्षित रखने और उसके आदान-प्रदान के लिए नेटवर्क की अहमियत काफ़ी बढ़ जाती है. इसी के चलते नेटवर्किंग की विशेषज्ञता-डिजाइन से लेकर तकनीक तक स्पेशलाइजेशन की ज़रूरत बढ़ गई है. ब्रोकेड ने उक्त स्पेशलाइजेशन विकसित कर पार्टनर्स के सामने अपने ग्राहक की हर ज़रूरत पूरा करने के लिहाज़ से समग्र समाधान पेश किया है. ब्रोकेड में वर्ल्डवाइड चैनल्स के उपाध्यक्ष बारबरा स्पाइकसेक ने कहा कि ब्रोकेड एपीएन प्रोग्राम में इन नए स्पेशलाइजेशन के जुड़ने से हम अपनी वह प्रतिबद्धता पूरी कर सकेंगे, जिसके तहत हमारे पार्टनर्स को अपने ग्राहकों को नई नेटवर्किंग तकनीक अपनाने में मददगार बनना है. हम ब्रोकेड ङ्घएपीएन प्रोग्राम के सतत विकास के लिए प्रतिबद्ध और समर्पित हैं. नए स्पेशलाइजेशन हमारे पार्टनर्स को अपने ग्राहकों के लिए विश्वस्त आईटी सलाहकार बनने में मदद करेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

साल 1991 से टेनिस की दुनिया में क़दम रखने वाले लिएंडर पेस के रैकेट से विरोधियों के छक्के छूटना कोई नई बात नहीं.

अलविदा मुरली

तुम्हारी फिरकी का जादू दुनिया याद रखेगी

मुथैया मुरलीधरन संन्यास लेने वाले हैं. अब तक के अपने टेस्ट करियर में मुरली 792 विकेट ले चुके हैं. भारत के ख़िलाफ़ गाले स्टेडियम पर अगर वह पहले टेस्ट में 8 विकेट और ले लेते हैं तो उनके टेस्ट क्रिकेट के करियर में 800 विकेट पूरे हो जाएंगे. ज़ाहिर है, 18 से 22 जुलाई के बीच होने वाला पहला टेस्ट मैच भारत के लिए सबसे चुनौतियों भरा होगा. साथ ही यादगार भी, क्योंकि इसके बाद भारतीय बल्लेबाजों को मुरली की गेंदों का सामना करने का अवसर फिर कभी नहीं मिलेगा. क्रिकेट की दुनिया में टेस्ट मैचों में सबसे ज़्यादा विकेट लेने वाले मुथैया मुरलीधरन का कहना है कि यह उनके संन्यास लेने का बिल्कुल सही वक़्त है. हालांकि 2011 में होने वाले विश्वकप में वह खेलेंगे या नहीं, इस बात पर अभी कुछ तय नहीं हुआ है. मुरली का कहना है कि वनडे के बारे में मैंने अभी कुछ सोचा नहीं है. विश्वकप में खेलने के बारे में फ़ैसला वह चयनकर्ताओं से बातचीत करने के बाद करेंगे. हां, इस बात पर वह मुहर ज़रूर लगाते हैं कि चैंपियन लीग में चेन्नई सुपर किंग्स के लिए ज़रूर खेलेंगे. मुरलीधरन ने युवा खिलाड़ियों से अपील की कि वे विश्वकप के लिए तैयार रहें, फिट रहें और ख़ूब प्रैक्टिस करें. अपने बॉलिंग एक्शन पर उंगली उठने के मसले पर विरोधियों पर निशाना साधते हुए मुरली कहते हैं कि खुली आंख से देखने के बाद किसी की आलोचना करना आसान है, मगर उससे क्या मतलब. बायो मैकेनिक्स ने तो उनके एक्शन को सही साबित कर दिया है. अपनी निजी ज़िंदगी के बारे में मुरलीधरन कहते हैं कि श्रीलंका के राष्ट्रपति महिंद्रा राजपक्षे और अर्जुन रणतुंगा ने उनकी काफ़ी मदद की. मुरली इसके लिए उनका आभार भी व्यक्त करते हैं.

भारत-श्रीलंका टेस्ट सीरीज 18 जुलाई से शुरू होने वाली है. यह भारतीय टीम के लिए जितनी महत्वपूर्ण है, उससे कहीं ज़्यादा मुरलीधरन के लिए होगी. अब तक कई दफ़ा अपने दम पर टीम के सिर जीत का सेहरा बांधने वाले मुरली अपना अंतिम मैच यादगार बनाने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखेंगे. वह ज़रूर चाहेंगे कि क्रिकेट की पिच पर उनकी आख़िरी मौजूदगी टीम को जीत का तोहफा देकर ख़त्म हो. 28 अगस्त, 1992 को ऑस्ट्रेलिया के ख़िलाफ़ कोलंबो में अपने करियर का पहला टेस्ट मैच खेलने वाले मुरलीधरन के रिकॉर्ड पर नज़र डालें तो वह अब तक 792 विकेट अपनी झोली में डाल चुके हैं. 800 के जादुई आंकड़े के बिल्कुल क़रीब. ऐसे में श्रीलंकाई क्रिकेट के तमाम खिलाड़ियों सहित दुनिया भर के क्रिकेट प्रेमियों की भी नज़र मुरलीधरन के इस अंतिम मैच पर रहेगी. ऐसे में धोनी एंड कंपनी के सामने चुनौती होगी कि वह मुरलीधरन की घूमती हुई गुगली गेंद को किस सूझबूझ से खेल पाते हैं.

गाले स्टेडियम में खेले जाने वाले पहले टेस्ट की बात करें तो मेजबान टीम यहां पिछले 12 साल में केवल 3 मैच हारी है. भारत ने यहां 2 मैच खेले हैं, जिनमें एक में जीत और एक मैच में हार मिली है. ऐसे में धोनी एंड कंपनी को मुरलीधरन की घूमती हुई गुगली गेंद को सूझबूझ से खेलना होगा. कोलंबो के एसएससी स्टेडियम में खेले जाने वाले दूसरे टेस्ट पर नज़र डालें तो श्रीलंका ने यहां की पिच पर 33 में से 17 मैचों पर जीत अपने नाम की है, जबकि 6 मैच गंवाए हैं और 10 मैचों में वह बराबरी पर रही है. भारत इस मैदान पर 6 मैचों में से एक पर ही जीत हासिल कर पाने में सफल रहा, जबकि दो में उसे हार मिली है. तीसरे टेस्ट के लिए तय स्टेडियम पी सारा ओवल की पिच पर श्रीलंका का प्रदर्शन बेहतर रहा है. यहां श्रीलंका ने 13 मैचों में से 7 में जीत दर्ज की.

वहीं भारत ने यहां तीन मैच खेले हैं, लेकिन जीत उसे एक में भी नहीं मिली. मुरलीधरन की घूमती हुई गेंद से दुनिया के बल्लेबाज ख़ौफ़ खाते हैं, लेकिन मुरली की मानें तो सचिन तेंदुलकर और ब्रायन लारा को बॉलिंग करना उनके लिए मुश्किल साबित होता है. अब देखना है कि 18 जुलाई से शुरू हो रहे भारत-श्रीलंका के पहले टेस्ट मैच में तेंदुलकर मुरलीधरन के सामने मुश्किल खड़ा कर पाते हैं या नहीं. भारत-श्रीलंका के बीच होने वाली आगामी सीरीज का फ़ैसला चाहे जो भी हो, लेकिन इस सीरीज के बाद श्रीलंकाई टीम के लिए मुरली जैसे स्पिनर गेंदबाज को अलविदा कहना आसान नहीं होगा.

उपलब्धियां

- अंतरराष्ट्रीय मुक़ाबलों में 1000 से अधिक विकेट लेने वाले पहले खिलाड़ी
- 11 टी-20 मैचों में 13 विकेट झटके
- टेस्ट मैचों में सर्वाधिक 66 बार पारी में 5 विकेट और 22 बार मैचों में 10 विकेट झटके
- करियर में हासिल कुल विकेट 1320

अवॉर्डस

- विसडेन लिडिंग क्रिकेटर इन द अवॉर्ड 2000
- विसडेन लिडिंग क्रिकेटर इन द अवॉर्ड 2006
- मैन ऑफ द मैच (वनडे)-14
- मैन ऑफ द मैच (टेस्ट मैच)-19

अब तक का सफर

	टेस्ट मैच	वन डे मैच
मैच	132	337
रन	1,256	660
बल्लेबाजी औसत	11.62	6.80
विकेट	792	515
गेंदबाजी औसत	22.71	22.93
श्रेष्ठ गेंदबाजी	9/51	7/30
कैच	72	128

शाबाश पेस !

भारतीय टेनिस स्टार लिएंडर पेस ने विंबल्डन ओपन 2010 जीतकर एक बार फिर दुनिया भर में देश का परचम लहराया है. यह सफलता उन सभी विरोधियों को एक करारा जवाब है, जो यह सोचते हैं कि उनके दिन लद चुके हैं. साथ ही उन्होंने यह भी जता दिया है कि उनमें अभी बहुत दम बाकी है. उत्साह से लबरेज पेस का मानना है कि अभी उनका श्रेष्ठ प्रदर्शन बाकी है. हाल ही में पेस ने जिम्बाब्वे की कारा ब्लैक के साथ मिलकर विंबल्डन का मिक्स्ड डबल्स का खिताब जीतकर इतिहास रच दिया. पेस-ब्लैक की जोड़ी ने वेस्ली मूडी और लीज़ा रेमंड की जोड़ी को 6-4, 7-6 (5) से शिकस्त दी. इस जीत के साथ पेस भारत के लिए सर्वाधिक 12 ग्रैंडस्लैम जीतने वाले खिलाड़ी भी बन गए हैं. इनसे एक क़दम पीछे पेस के पूर्व जोड़ीदार महेश भूपति हैं, जिन्होंने 11 ग्रैंडस्लैम अब तक अपने नाम किए हैं. साल 1991 से टेनिस की दुनिया में क़दम रखने वाले लिएंडर पेस के रैकेट से विरोधियों के छक्के छूटना कोई नई बात नहीं. पेस ने 6 डबल्स और 6 मिक्स्ड डबल्स खिताब जीते हैं. 1999 में पेस ने महेश भूपति के साथ मिलकर फ्रेंच ओपन का पहला ग्रैंडस्लैम जीता था. पेस के रैकेट से बने आंकड़ों की बात करें तो उन्होंने पुरुष डबल्स के ग्रैंडस्लैम फाइनल में 12 बार जीत हासिल की, जिसमें 6 बार विजेता और 6 बार उपविजेता रह चुके हैं. वहीं मिक्स्ड डबल्स में उन्होंने 11 बार जीत हासिल की, जिसमें वह 6 बार विजेता और 5 बार उपविजेता रहे.

पिछले कुछ सालों से प्रदर्शन से इतर उनका ग्लैमरस पार्टियों में आने-जाने और लारा दत्ता के साथ अफेयर की ख़बरें मीडिया में सुर्ख़ियां बटोरती रहीं. इन सबके बावजूद पेस की रेस घटी नहीं. उनकी जीत का सिलसिला बदस्तूर जारी है. ख़बर तो यह भी है कि पेस ने अब फिल्मों में भी काम करने के लिए हामी भर दी है. वह जल्द फिल्मी पर्दे पर हीरो की भूमिका में नज़र आएंगे. बहरहाल पेस के संन्यास लेने पर बॉलीवुड को एक अच्छा हीरो तो मिल जाएगा, लेकिन क्या भारतीय टेनिस को एक दूसरा पेस मिल पाएगा? यह सवाल उन तमाम टेनिस प्रेमियों के दिलों में है, जो लिएंडर पेस के करिश्माई टेनिस खेल को देखते आ रहे हैं.

साल 1991 से टेनिस की दुनिया में क़दम रखने वाले लिएंडर पेस के रैकेट से विरोधियों के छक्के छूटना कोई नई बात नहीं. पेस ने 6 डबल्स और 6 मिक्सड डबल्स खिताब जीते हैं.

पवार कृषि नहीं, क्रिकेट मंत्री हैं

शरद पवार आईसीसी अध्यक्ष बन तो गए, लेकिन इसके बाद क्रिकेट, देश की कृषि और किसानों का भविष्य कैसा होगा, यह बताने के लिए हम बात आईपीएल से शुरू करते हैं, जिसकी चिंगारी ने राजनीति से लेकर बॉलीवुड तक को सुलगा दिया. विदेश राज्यमंत्री शशि थरूर को इस्तीफ़ा देना पड़ा तो आईपीएल के सर्वेसर्वा एवं कमिश्नर ललित मोदी को भी निलंबित होना पड़ा. चौथी दुनिया ने तो यह ख़ुलासा सबसे पहले ही कर दिया था. लेकिन उसके बाद शरद पवार ने एक टीवी चैनल पर इंटरव्यू के दौरान आईपीएल में ख़ुद के आर्थिक हित जुड़े होने की बात क़बूली थी, जिसमें उनकी पत्नी प्रतिभा पवार, सांसद बेटी सुप्रिया सुले और दामाद पर लगे आरोप एक-एक कर सामने आ रहे थे. लेकिन ज़रा सोचिए, आख़िर इस सब का नतीजा क्या निकला?

अब जबकि पवार आईसीसी अध्यक्ष बन गए हैं तो उन्होंने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के सामने प्रस्ताव रखा है कि उन्हें खाद्य और उपभोक्ता मंत्रालय से हटा दिया जाए या एक और राज्यमंत्री दिया जाए. शरद पवार के पास फ़िलहाल तीन मंत्रालय हैं. वह कृषि, खाद्य और उपभोक्ता मामलों के मंत्री हैं और उनके साथ तीन राज्यमंत्री भी हैं. ऐसा भी नहीं है कि हमारे देश में समस्या नहीं है. ख़ुद शरद पवार के मंत्रालय की ही बात करें तो उनके मंत्री रहते पूरे देश में हज़ारों किसानों ने आत्महत्या कर ली. हाल ही में जब मीडिया ने महंगाई पर पवार से सवाल पूछा तो उनका बयान था, आई एम नॉट रेस्पॉन्सेबल फॉर एव्रीथिंग. इस पर ख़ूब हंगामा भी मचा था. इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि पवार अपने मंत्रालय में भी सफल नहीं रहे. फ़िलहाल ख़ुद पर बढ़ गए भार को कम करने के पीछे पवार की मंशा क्या है? वह ऐसा सिर्फ़ इसलिए नहीं कर रहे हैं कि उन पर क्रिकेट का भार बहुत ज़्यादा बढ़ गया है. वह ऐसा इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि वह अपनी बेटी सुप्रिया सुले को भी मंत्री बनवाना चाहते हैं. सवाल यह भी है कि पवार ऐसे वक़्त में अपना बोझ क्यों घटवाना चाहते हैं, जब यूपीए सरकार अपनी बहुप्रतीक्षित और बहुप्रचारित योजना के लिए खाद्य सुरक्षा बिल मानसून सत्र में लाने वाली है. ग़ौरतलब है कि इस योजना का कार्यान्वयन खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय को ही करना है. इस योजना के तहत ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को 35 किलो अनाज प्रति माह दिए जाने की बात है. जबकि पवार बहुत पहले ही सरकार की इस योजना का यह कहते हुए विरोध कर चुके हैं कि देश में अनाज का इतना भंडार नहीं है. जब सरकार आम लोगों के लिए इतनी बड़ी योजना बना रही हो और ऐसे वक़्त में पवार ख़ुद को खाद्य मंत्रालय से मुक्त करने की गुहार लगा रहे हैं तो इसका क्या अर्थ निकलता है? लेकिन सवाल उठता है कि ऐसे ग़ैर ज़िम्मेदार आदमी को, जिसे कृषि से ज़्यादा क्रिकेट से प्रेम है, आख़िर मंत्री बनाया ही क्यों जाए. क्यों न भार हल्का करने की जगह उसे भारमुक्त ही कर दिया जाए.

दरअसल, शरद पवार ने क्रिकेट के प्रशासन में 2001 में क़दम रखा. पवार की नज़र हमेशा कुर्सी पर ही रही. सबसे पहले उनका विवाद अजित वाडेकर से हुआ. काफ़ी माथापच्ची और जोड़-तोड़ के बाद महाराष्ट्र क्रिकेट एसोसिएशन के चुनाव में उन्होंने अजित वाडेकर को हराया और एसोसिएशन के अध्यक्ष बने. पवार राजनीति के पुराने खिलाड़ी हैं. आख़िर ऐसे में क्रिकेट प्रशासन में कुर्सी को लेकर ज़्यादा दिलचस्पी से क्या ताल्लुक? महाराष्ट्र क्रिकेट एसोसिएशन के बाद उन्होंने भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड अथवा बीसीसीआई प्रशासन में हाथ बढ़ाया. इस बार उनके निशाने पर थे तत्कालीन बीसीसीआई अध्यक्ष जगमोहन डालमिया. ख़ैर, रणवीर सिंह महेंद्रा ने डालमिया के समर्थन से पवार को चुनाव हरवा दिया था. शायद वह शरद पवार के करियर की पहली और आख़िरी हार थी. आख़िरकार पवार 2005 में महेंद्रा को हराकर बीसीसीआई अध्यक्ष पद पर क़ाबिज़ हो गए. पवार के ही पावर का नतीजा था कि डालमिया को बोर्ड से निष्कासित तक होना पड़ा. यह बात भी सच है कि शरद पवार का दामन भी बीसीसीआई अध्यक्ष के रूप में दागदार ही रहा.

ऐसा नहीं कि शरद पवार के आईसीसी अध्यक्ष बनने पर हम खुश नहीं हैं. जगमोहन डालमिया के बाद कोई दूसरा भारतीय क्रिकेट प्रशासन के प्रमुख पद पर क़ाबिज़ हुआ है, लेकिन दुःख अगर है तो देश में कृषि की हालत का, जिसका मंत्रालय पवार छोड़ना नहीं चाहते. और यह तब तक रहेगा, जब तक पवार यह फ़ैसला नहीं कर लेते कि वह देश के कृषि मंत्री हैं या क्रिकेट मंत्री.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 19 जुलाई–25 जुलाई 2010

फ़िल्म किडनैप में बिकनी पहन कर उन्होंने अपने सेक्सिएस्ट लुक का प्रदर्शन किया.

सिनेमा के बाज़ार में फंसा मीडिया

राजेश एस कुमार

मीडिया की गिरती साख पर चिंता जताते हुए लिखा गया कि पत्रकारिता और मीडिया तो बाज़ार की नब्ज़ नहीं पकड़ पाए, उल्टे बाज़ार ने मीडिया की नब्ज़ पकड़ ली. बात काफ़ी हद तक सही भी है. आज अख़बार का हर पन्ना और टीवी कार्यक्रम कोई ख़बर दिखाने से पहले प्रायोजकों को ख़ुश करता है. लेकिन यहां मसला है मीडिया और बाज़ार के सबसे मज़बूत खिलाड़ी बॉलीवुड यानी हिंदी सिनेमा का. एक समय तक अख़बार और तब के इकलौते टीवी यानी दूरदर्शन पर अपनी झलक दर्ज कराने के लिए तरसने वाला सिनेमा आज हर अख़बार और चैनल के प्राइम टाइम न्यूज सेगमेंट में मौजूद है. भले ही किसानों की आत्महत्या, महंगाई और राजनीतिक मुद्दों की ख़बर चले या न चले, पर बिग बी की ट्विटिंग और बिपाशा एवं शिल्पा के जिस्म दिखाऊ योग के कार्यक्रम ज़रूर चलते हैं.

अचानक यह हुआ कैसे? सिनेमा आज मीडिया के अर्थोपार्जन का मुख्य ज़रिया कैसे बन गया? यह बदलाव इसलिए हुआ, क्योंकि पिछले कुछ दशकों से मीडिया ने सिनेमा के लिए पीआर यानी प्रचारक और ठेकेदार का काम करना शुरू कर दिया. फिल्मों को हिट-फ्लॉप करने का ज़िम्मा उसने ख़ुद ले लिया. जो निर्माता अपनी फिल्म के इश्तेहार, मेकिंग फुटेज, फर्स्ट प्रोमो और कलाकारों के साक्षात्कार मुहैया कराता है, मीडिया उसकी फिल्म को हिट कराने का ज़िम्मा ले लेता है. और जो निर्माता ख़र्च नहीं कर सकता, उसकी फिल्म तो डूबी समझिए. पहले मीडिया का यह कारोबार एक सीमित दायरे में सिमटा हुआ था, पर अब तो यह धंधा कुछ ज़्यादा ही गंदा होता जा रहा है. फिल्मों को ज़बरन हिट और फ्लॉप कराने के लिए कुछ चैनल्स बाक़ायदा कैंपेन चलाते हैं, जिसमें चैनल मालिक से लेकर समीक्षक तक सभी शामिल होते हैं.

आइए, मीडिया के कुछ गंदे खेलों का ज़िक्र करते हैं. 2009 की फिल्म चांदनी चौक टू चाइना के कुछ पेड प्रिव्यू रिलीज के एक दिन पहले यानी गुरुवार को रखे गए. आम तौर पर मीडिया को मुफ्त में फिल्म दिखाई जाती है, लेकिन व्यवसायिक कारणों के चलते फिल्म सभी के लिए प्रीमियर की गई. शो ख़त्म होते ही फिल्म से जुड़े निगेटिव फीडबैक एसएमएस और फोन के ज़रिए देश भर में फैलाए जाने लगे. हालांकि इसमें ज़्यादातर वही लोग थे, जो अक्षय के बढ़ते कद से परेशान थे. एक चैनल के ख़ुलासे के मुताबिक़, उक्त निगेटिव रिव्यू करन और शाहरुख की पीआर कंपनियों से संबंधित थे, लेकिन यहां मीडिया का रवैया चौंकाने वाला था. रिलीज से पहले ही टाइम्स समेत अधिकतर अख़बारों ने समीक्षा में फिल्म की जमकर आलोचना करते हुए उसे द्रोणा, टशन एवं लव स्टोरी-2050 से भी बदतर बता डाला. जबकि दर्शकों के मुताबिक़ यह फिल्म टाइमपास कॉमेडी थी. लेकिन रातोरात मीडिया ने फिल्म के ख़िलाफ़ ऐसा कैंपेन चलाया कि रिलीज से पहले ही फिल्म फ्लॉप! कारण, अक्षय भारतीय मीडिया से ज़्यादा फिल्म को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित करने में लगे हुए थे. किस्से और भी हैं. 2007 में दीवाली के मौक़े पर ओम शांति ओम एवं सांवरिया रिलीज हुईं. दीवाली में ज़्यादातर बिग प्रोडक्शन की फिल्में ही रिलीज होती हैं और मुनाफ़े के चक्कर में दूसरी छोटी फिल्में आगे-पीछे खिसका दी जाती हैं. ऐसे में शाहरुख के सामने अपनी फिल्म रिलीज करने की हिम्मत दिखाई संजय लीला भंसाली ने. सांवरिया को जैसे ही दीवाली में रिलीज करने की घोषणा की गई, तभी से दोनों फिल्मों की टक्कर के बहाने अख़बार और चैनलों ने जनता को यह बताना शुरू कर दिया कि ओम शांति ओम के सामने सांवरिया कितनी छोटी फिल्म है. ज़ाहिर है शाहरुख को मीडियामैन यूं ही नहीं कहते.

पीआर का सिद्धांत होता है कि कुछ समय पहले से कैंपेन चलाकर किसी भी उत्पाद के प्रति लोगों की न सिर्फ़ राय बदली जाए, बल्कि उन्हें यह मानने पर मजबूर किया जाए कि उसका ही उत्पाद बेहतर है. इसके लिए भले ही ओम शांति ओम जैसी चलताऊ मसाला फिल्म के सामने एक रूमानी फिल्म को घटिया साबित कर दिया जाए. यह सिद्धांत काम कर गया. बाद में भंसाली को सार्वजनिक तौर पर कहना पड़ा कि वह खुली आलोचना के लिए तैयार हैं और मीडिया कैंपेन उन्हें फेल नहीं कर सकते. ताज़ा उदाहरण राम गोपाल वर्मा की फिल्म रण का लिया जा सकता है. यह फिल्म टीआरपी की लड़ाई में किसी भी हद तक गिरने वाले दो मीडिया ग्रुपों पर आधारित थी. फिल्म काल्पनिक थी, पर मीडिया को लगा कि यह फिल्म उसे उसका गिरहबान दिखाने की कोशिश कर रही है. बस फिर क्या था, रामू और रण के ख़िलाफ़ ऐसा कैंपेन चलाया गया कि फिल्म को फ्लॉप करके ही दम लिया गया. आजकल जनता भी पहले रिव्यू देखती है फिर फिल्म देखने जाती है. जबकि ज़्यादातर रिव्यू पेड होते हैं. ऐसी कई बेहतरीन फिल्मों में शुमार किया जाता है, पर रिलीज के दौरान मीडिया के मार्केटिंग रवैए के चलते उन्हें फ्लॉप करार दिया गया था. इनमें राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता *पुकार, रज़िया सुल्तान, नायक, ब्लैक फ्राइडे, ज़ख्म, मेरा नाम जोकर और संघर्ष* के नाम लिए जा सकते हैं.

ख़ैर फिल्मों का व्यापार तो चलता रहेगा, पर असल चिंता मीडिया के व्यवसायिक रुख़ और गिरते स्तर की है. आज मीडिया बाज़ार और मुनाफ़े के चंगुल में कुछ ऐसा फंसा है कि वह फिल्मों का बॉक्स ऑफिस और पीआर डिपार्टमेंट भर बनकर रह गया है. इसीलिए जनता और सिनेमा, दोनों ही तरफ से मीडिया की विश्वसनीयता पर अक्सर सवाल उठते रहते हैं.

rajeshy@chauthiduniya.com

कॉमेडी करेंगी मिनीषा

डेल्ही गर्ल मिनीषा लांबा जल्द ही विनय पाठक और के के मेनन के साथ सागर बालेरी की फिल्म भेजा फ्राई के सीक्वल में कॉमेडी करती नज़र आएंगी. फिल्म की शूटिंग चल रही है. पंजाबी, हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच पर मजबूत पकड़ रखने वाली मिनीषा नॉन फिल्मी बैकग्राउंड के बावजूद बॉलीवुड की प्रतिष्ठित नायिकाओं में गिनी जाती हैं. मेहनत के साथ-साथ मिनीषा पर उनकी किस्मत भी मेहरबान रही है. उन्होंने कॉलेज के दौरान शौकिया तौर पर मॉडलिंग शुरू की थी. तब वह एलजी, सोनी, कैडबरी, हाजमोला, एयरटेल एवं सनसिल्क आदि एड फिल्मों में नज़र आईं. फिर उन्होंने मॉडलिंग से बॉलीवुड की तरफ रुख किया. अपनी हालिया फिल्म वेल डन अब्बा में उन्होंने गंभीर एक्टिंग की. फिल्म किडनैप में बिकनी पहन कर उन्होंने अपने सेक्सिएस्ट लुक का प्रदर्शन किया. इससे उनकी कलाकारी का दम सबको मालूम हो गया, लेकिन उनकी किस्मत का सितारा अब भी चमकता नहीं दिखाई दे रहा. कुछ ब्रांड प्रमोशन करके ही वह इन दिनों कैमरे के सामने नजर आ रही हैं. मिनीषा कहती हैं कि कैडबरी की एड फिल्म के ऑडिशन के दौरान निर्देशक सुजीत सिरकर ने उन्हें फिल्म में लीड रोल का ऑफर किया था, जिसे उन्होंने झट से स्वीकार कर लिया. बक़ौल मिनीषा, मैंने फिल्मों में आने के बारे में कभी सोचा भी नहीं था. सब कुछ अचानक हुआ. मिनीषा कहती हैं कि अगर वह एक्ट्रेस न होतीं तो पत्रकार होतीं और युद्ध-सैन्य गतिविधियों की रिपोर्टिंग करतीं. हालांकि वह अपने मौजूदा पेशे से काफी खुश हैं और इसी फील्ड में आगे जाना चाहती हैं. फिल्मों में उनका ड्रीम रोल एक्शन सीन है या फिर कोर कॉमेडी.

प्रिव्यू

आयशा

प्रसिद्ध लेखक जेम ऑस्टिन की लोकप्रिय ब्रिटिश कृति एमा से प्रेरित है आने वाली फिल्म आयशा. सोनम कपूर और अभय देओल स्टारर इस फिल्म का निर्माण अनिल कपूर प्रोडक्शंस के तहत हुआ है. निर्देशन की बागडोर राजश्री ओझा ने संभाली है. आयशा एक प्यारी लड़की का नाम है, जो हर वक्त अपने ही सपनों में खोई रहती है. हर लड़की की तरह वह भी वैवाहिक जीवन के खूबसूरत लम्हें जीने और एक राजकुमार पाने का ख्वाब देखती है. आयशा अपने सपनों को हक़ीकत में जीना चाहती है, जिसके लिए वह बहुत सोच-समझ कर क़दम उठाती है. वह अपनी ज़िंदगी में आने वाले हर इंसान की अपने तरीक़े से परीक्षा लेती है और ख़ुद से जुड़ने वाले लोगों को तिकड़म भिड़ा कर अपनी उंगलियों पर नचाती रहती है, लेकिन तभी तक, जब तक कि अर्जुन आयशा की इस चालबाज़ी में नहीं फंसता. दिल्ली की हाईक्लास सोसायटी में पली-बढ़ी आयशा जीवन के प्रति पूर्ण आशावादी है और काफ़ी स्टाइलिश तरीक़े से जीने में विश्वास रखती है. उसके इस खेल में उसकी सबसे अजीज़ सहेली पिंकी, छोटे शहर से आई शेफाली, वेस्ट दिल्ली निवासी रणधीर एवं स्मार्ट ध्रुव आदि फंसते हैं, लेकिन अर्जुन की एंट्री के बाद उसका सारा खेल बिगड़ जाता है. फिल्म की अधिकतर शूटिंग दिल्ली और मुंबई में हुई है. गीत लिखे हैं जावेद अख्तर ने, जबकि संगीत निर्देशन अमित त्रिवेदी का है. अमित ने अभी बहुत ज़्यादा काम नहीं किया है. वह इंडस्ट्री में नए हैं, लेकिन जावेद अख्तर कहते हैं कि उनके संगीत में जादू है. वह उनके संगीत को स्मार्ट म्यूजिक कहते हैं. फिल्म में सोनम कपूर और अभय देओल के अलावा इरा दूबे, अमृता पुरी, लिजा हेडसन, सुमन, सायरस साहूकार एवं अरुणोदय सिंह आदि प्रमुख हैं. फिल्म आगामी छह अगस्त को रिलीज होगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

बिहार झारखंड

दिल्ली, 19 जुलाई–25 जुलाई 2010

www.chauthiduniya.com

नीतीश को कांग्रेस से डर

चुनाव जैसे-जैसे नज़दीक आते जा रहे हैं, कांग्रेस की रणनीति और तैयारियां देख नीतीश की पेशानी पर बल पड़ते जा रहे हैं. वह मौक़ा मिलते ही कांग्रेस पर निशाना साधने से नहीं चूकते. उनका साथ दे रहे हैं दिल्ली में बैठे शरद यादव. लेकिन राजनीतिक गलियारों में चर्चा आम है कि नीतीश के मन में कांग्रेस का डर बैठ गया है. वजह क्या है?

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

सरोज सिंह

मौक़ा था जहानाबाद के पूर्व सांसद अरुण कुमार के जदयू में लौटने का, पर नीतीश कुमार के तरकश के सारे तीर कांग्रेस को भेदने में लगे थे. गुस्सा इतना कि उन्होंने मीडिया को भी नहीं छोड़ा. कहने लगे, दो सांसद एवं दस विधायकों वाली पार्टी को मीडिया बेवजह इतना तवज्जो दे देता है. कांग्रेस के केंद्रीय मंत्री जो बोल जाते हैं, उसे हूबहू छाप दिया जाता है. मीडिया को चाहिए कि वह कम से कम राज्य सरकार का भी पक्ष जान ले. दूसरी तरफ शरद यादव दिल्ली में गरज रहे हैं कि बिहार में कांग्रेस का कोई वजूद नहीं है. ऐसा पहली बार है कि राजद एवं लोजपा को छोड़ चुनाव के ठीक पहले कांग्रेस सीधे तौर पर नीतीश के निशाने पर आई है. नीतीश कुमार की इस बेचैनी की वजह कांग्रेस की चुनावी तैयारी और उससे राजग गठबंधन के वोटों में हो रही सेंधमारी मानी जा रही है. इसके अलावा मुस्लिम वोटों को लेकर नीतीश कुमार का दावा भी कांग्रेस के कारण किसी न किसी रूप में प्रभावित हो रहा है.

दरअसल, राहुल गांधी बिहार में जो राजनीतिक प्रयोग करना चाहते हैं, उसकी उल्टी गिनती शुरू हो गई है. मुस्लिम अध्यक्ष बनाने के बाद केंद्रीय मंत्रियों ने बिहार का दौरा शुरू कर दिया है. लगभग दर्जन भर मंत्रियों की फौज़ जनता को यह समझा रही है कि नीतीश कुमार ने तमाम केंद्रीय मदद के बावजूद बिहार का विकास नहीं किया. केंद्रीय मंत्रियों को यह ज़िम्मेदारी दी गई है कि उनके विभाग से जो पैसा बिहार भेजा गया, वे उसके उपयोग की हक़ीक़त से यहां की जनता को अवगत कराएं. केंद्रीय ऊर्जा राज्यमंत्री भरत सिंह सोलंकी ने जो आरोप राज्य सरकार पर लगाए, उनसे बिहार की सियासत में हड़कंप मच गया. अभी तक नीतीश सरकार यह कहती आ रही थी कि केंद्र के सौतेले व्यवहार के कारण बिजली के मामले में बिहार पिछड़ता जा रहा है, लेकिन भरत सिंह सोलंकी ने पलटवार करते हुए कहा कि राज्य सरकार बिजली के मामले में गंभीर नहीं है. उन्होंने कहा कि अभी तक यहां ग्रामीण विद्युतीकरण की कोई योजना नहीं बनाई गई है. विद्युत उपकेंद्रों की स्थापना के लिए सरकार ज़मीन मुहैया नहीं करा रही है. राज्य में 1900 किलोमीटर संचरण लाइन बिछाने के लिए 2200 करोड़ रुपये दिए गए हैं. इसका काम भी आगे नहीं बढ़ पाया है. बिहार में राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के तहत 23,211 गांवों का विद्युतीकरण होना था, लेकिन केवल 11,800 गांवों में ही बिजली पहुंच पाई है. कोल लिंकेज में अड़चन संबंधी राज्य सरकार के आरोपों का जवाब देते हुए सोलंकी ने कहा कि इसके लिए बनी नीति पूरी तरह पारदर्शी है. कोई भी डेवलपर जब पावर प्लांट लगाता है तो इसके लिए आवश्यक ज़मीन, पानी, वन एवं पर्यावरण संबंधी शर्तें पूरी करनी होती हैं. यह तो केवल एक बानगी भर थी. अभी तो सड़क, शिक्षा और दलितों–अल्पसंख्यकों के कल्याण से संबंधित राज्य सरकार के दावों की भी धज्जियां उड़ाने की तैयारी कांग्रेस की है. पार्टी चाहती है कि विकास के मामले में नीतीश कुमार को कठघरे में खड़ा कर उन्हें बचाव की मुद्रा में ला दिया जाए और उसके बाद आक्रमक प्रचार अभियान चलाकर मतदाताओं का दिल जीत लिया जाए. इसके अलावा भाजपा एवं जदयू में नरेंद्र मोदी को लेकर जो विवाद चल रहा है, उसका पूरा फ़ायदा भी कांग्रेस उठाने की तैयारी में है. कांग्रेस प्रदेश के मतदाताओं को यह बताना चाहती है कि नीतीश कुमार का मुस्लिम प्रेम केवल दिखावा है, अगर उन्हें सही मायनों में मुसलमानों से प्रेम होगा तो वह चुनाव प्रचार में नरेंद्र मोदी को बिहार नहीं आने देंगे. इसके साथ ही मुसलमानों के लिए चलाई जा रही योजनाओं में बरती गई उदासीनता को भी कांग्रेस अपना हथियार बनाने जा रही है. मदरसों के उत्थान को लेकर नीतीश के आरोपों को कांग्रेस ने यह कहकर ख़ारिज़ कर दिया कि बिहार सरकार ने प्रस्ताव को सही मंत्रालय के पास भेजा ही नहीं और केंद्र पर पक्षपात का आरोप लगाया जा रहा है. किसान महापंचायत के नेताओं के साथ कांग्रेस की दोस्ती भी नीतीश के लिए परेशानी का सबब बनती जा रही है.

राहुल गांधी बिहार में जो राजनीतिक प्रयोग करना चाहते हैं, उसकी उल्टी गिनती शुरू हो गई है. मुस्लिम अध्यक्ष बनाने के बाद केंद्रीय मंत्रियों ने बिहार का दौरा शुरू कर दिया है. लगभग दर्जन भर मंत्रियों की फौज़ जनता को यह समझा रही है कि नीतीश कुमार ने तमाम केंद्रीय मदद के बावजूद बिहार का विकास नहीं किया. केंद्रीय मंत्रियों को यह ज़िम्मेदारी दी गई है कि उनके विभाग से जो पैसा बिहार भेजा गया, वे उसके उपयोग की हक़ीक़त से यहां की जनता को अवगत कराएं.

राहुल का गेम प्लान यह है कि विकास एवं धर्मनिरपेक्षता को लेकर नीतीश कुमार की जो छवि बनी है, उसे आंकड़ों के माध्यम से बदरंग कर दिया जाए. इसके बाद सोनिया गांधी, प्रियंका गांधी एवं स्वयं उनके तूफ़ानी दौरे से कांग्रेस के पक्ष में लहर पैदा कर दी जाए. इस दौरान पूरा फोकस बिहार में विकास और अमन–चैन वाली सरकार बनाने के वादों पर होगा. जनता के दिल में यह बात बैठाने की कोशिश होगी कि सही मायनों में बिहार का विकास तभी संभव है, जब केंद्र एवं राज्य दोनों में कांग्रेस की सरकार हो. कांग्रेस की तैयारी पहले चरण में दो हज़ार होर्डिंग लगाने की है, जिनमें नीतीश सरकार की विफलताओं को दर्शाया जाएगा. अगर जनता को यह पसंद आया तो अगले चरण में पूरे बिहार को होर्डिंगों से पाट दिया जाएगा. सोनिया गांधी के राजनीतिक सचिव अहमद पटेल ख़ुद इन तैयारियों को देख रहे हैं.

नीतीश कुमार को कांग्रेस की इस चुनावी तैयारी और रणनीति का आभास है. नीतीश कुमार यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जिन वोटों की बदौलत वह राजनीति करते हैं, उनमें सबसे ज़्यादा सेंधमारी का ख़तरा कांग्रेस की तरफ से है. लालू प्रसाद यादव के साथ यादवों का, तो रामविलास के साथ पासवान मतदाताओं का एक बड़ा वर्ग है और यह नीतीश के लिए चिंता का विषय भी नहीं है, लेकिन सवर्ण मतदाताओं के अलावा दलितों एवं मुसलमानों के वोट पर कांग्रेस की झपटमारी नीतीश कुमार को बड़ा नुक़सान पहुंचा सकती है. पिछले विधानसभा चुनाव में सवर्ण मतदाताओं ने नीतीश कुमार के लिए जमकर मतदान किया और राजग गठबंधन के पक्ष में माहौल बनाने में अहम भूमिका निभाई. लेकिन अलग–अलग कारणों से नाराज़ उक्त मतदाता इस बार विकल्प की तलाश में हैं. नुक़सान कम हो, इसके लिए सवर्ण नेताओं को रिझाने एवं पार्टी में लाने के प्रयास किए जा रहे हैं. जगन्नाथ मिश्र को कैबिनेट मंत्री की सुविधा प्रदान कर दी गई है. पहले विजय चौधरी को जदयू का प्रदेश अध्यक्ष और अब अरुण कुमार को पार्टी में शामिल करके भूमिहार मतदाताओं को लुभाने का प्रयास किया जा रहा है. राजपूतों का गुस्सा शांत करने के लिए कोशिश की जा रही है कि दिग्विजय सिंह की पत्नी पुतुल देवी को बांका के उपचुनाव में जदयू का प्रत्याशी बना दिया जाए. जदयू का आकलन है कि इससे विधानसभा चुनाव में पार्टी को काफी फ़ायदा होगा.

बताया जाता है कि नीतीश कुमार के दूत इस तरह का प्रस्ताव संबंधित लोगों को दे आए हैं. मुसलमानों के बीच पैठ बनाने के लिए दाग़ी तस्लीमुद्दीन को पार्टी में शामिल करने पर भी नीतीश कुमार ने संकोच नहीं किया. जदयू के रणनीतिकारों को पता है कि लालू एवं पासवान से कहीं अधिक ख़तरा कांग्रेस से है. कांग्रेस जिस तरह से आक्रमक हो रही है, उसे देखते हुए जदयू को भी अपने पत्ते खोलने में अब देरी नहीं करनी चाहिए. इसलिए पार्टी ने गहन मंथन के बाद अपनी लाइन साफ़ कर ली है. पहली कोशिश है कि सवर्ण वोटों का कम से कम नुक़सान हो. इसके लिए इस समुदाय के बड़े नेताओं को रिझाने एवं पार्टी में लाने का काम तेज़ कर दिया गया है. दूसरी पहल यह है कि जिस नुक़सान को रोकना संभव नहीं है, उसकी भरपाई नए वोट बैंक से की जाए. इस कड़ी में महादलितों का नंबर सबसे ऊपर है. इसके बाद जदयू की नज़र अल्पसंख्यक मतदाताओं पर है. नरेंद्र मोदी को लेकर पार्टी का कड़ा स्टैंड इसी की कड़ी है. पार्टी इस बात का ज़ोर–शोर से प्रचार करेगी कि नीतीश शासन में राज्य में सांप्रदायिक माहौल ठीक रहा और कहीं कोई दंगा नहीं हुआ. ऐसा तब हुआ, जब भाजपा के साथ जदयू की गठबंधन वाली सरकार थी. इसके अलावा मुसलमानों के लिए चलाई गई योजनाओं को भी प्रचारित किया जाएगा. यही नहीं, जाति–धर्म से ऊपर उठकर महिला मतदाताओं पर भी नीतीश कुमार की पैनी नज़र है. महिलाओं को आरक्षण, लड़कियों को साइकिल वितरण एवं अन्य योजनाओं को आधार बनाकर जदयू की पूरी कोशिश होगी कि आधी आबादी का वोट अपने पक्ष में कर लिया जाए. महिलाओं से यह कहकर भी वोट मांगा जाएगा कि नीतीश के शासन में भय का माहौल ख़त्म हुआ और उनका देर रात तक बाज़ार में रहना संभव हो पाया. इस तरह नीतीश कुमार राहुल गांधी के गेम प्लान को फेल करना चाहते हैं, पर चुनावी नगाड़ा बजने के बाद ही यह पता चल पाएगा कि नीतीश कुमार के तीर निशाने पर लगे या नहीं. फ़िलहाल तो उन्हें कांग्रेस का डर सता रहा है.

feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

हजारीबाग से राजधानी रांची तक सड़क के दोनों किनारों पर पुराने और विशाल फलदार पेड़ हैं, जिनकी संख्या बीस हज़ार से भी अधिक है.

विधानसभा उपचुनावों में पार्टी लाइन के विपरीत जाकर जगदीश शर्मा ने अपनी पत्नी शांति शर्मा को घोसी से उतारा तो सरकार के निर्देश पर एसटीएफ को उतार दिया गया था.

चौथी दुनिया

सौ किमी सड़क के लिए हज़ारों पेड़ों की बलि

रांची से हज़ारीबाग़ तक लगभग सौ किलोमीटर फोरलेन सड़क बनाने के लिए क़रीब बीस हज़ार पेड़ों को काटा जाएगा. इस परियोजना पर काम शुरू हो गया है. फोरलेन सड़क निर्माण के लिए वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने सड़क के किनारे स्थित पेड़ों को काटने की अनुमति दे दी है. अनुमति मिलते ही पेड़ों को काटने का काम शुरू हो गया है. पटना–रांची राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 33 को फोरलेन में तब्दील करने की योजना है. हजारीबाग से डेमोटांड तक क़रीब दस किलोमीटर सड़क को चौड़ा करने के लिए अब तक तीन सौ पेड़ों को काटा जा चुका है, जिसके चलते एक सौ वर्ष से भी अधिक पुराने पेड़ों का अस्तित्व मिट चुका है. पेड़ों को काट कर वन विभाग के हवाले किया जा रहा है.

हजारीबाग से राजधानी रांची तक सड़क के दोनों किनारों पर पुराने और विशाल फलदार पेड़ हैं, जिनकी संख्या बीस हज़ार से भी अधिक है. हजारीबाग से रांची तक कई घुमावदार घाटियां एवं घने जंगल हैं. फोरलेन सड़क निर्माण में कम से कम बीस हज़ार पेड़ों के साथ–साथ जंगलों का उजड़ना भी तय है. सरकार के इस निर्णय से पर्यावरणविद हतप्रभ हैं. वे पेड़ों को काटकर और जंगलों को उजाड़ कर विकास करने की योजना को विनाश की संज्ञा दे रहे हैं. रामगढ़ ज़िले के पर्यावरण कार्यकर्ता झमन महतो जंगलों को बचाने की मुहिम चला रहे हैं. वह कहते हैं कि विकास का यह मॉडल ठीक नहीं है. उनका मानना है कि झारखंड का शाब्दिक अर्थ ही झाड़ण्झाड़ यानी जंगलों का खंड है. यहां की संस्कृति जल, जंगल और ज़मीन से जुड़ी है. दुनिया जब पर्यावरण का अर्थ नहीं जानती थी, तबसे झारखंड के लोग पेड़–पौधों की पूजा करते आ रहे हैं. प्रकृति के साथ इनका गहरा संबंध रहा है. यहां के लोग प्राकृतिक संसाधनों को हमेशा संजोते रहे हैं, लेकिन विडंबना यह है कि झारखंड में पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक वनोत्पादों का अस्तित्व ही समाप्त किया जा रहा है. ग्लोबल वार्मिंग को लेकर पूरे विश्व में चिंता जताई जा रही है. हाल में कोपेनहेगन में आयोजित पर्यावरण गोष्ठी में विश्व के 144 देशों के प्रतिनिधियों एवं पर्यावरणविदों ने शिरकत की. ग्लोबल वार्मिंग पर गहन विचार–विमर्श कर ग्रीन हाउस गैसों में कटौती करने का निर्णय लिया और अनुबंध किया गया, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर झारखंड में पर्यावरण के विनाश पर विकास की आधारशिला रखी जा रही है. जंगलों की अवैध कटाई से झारखंड जंगल विहीन होता जा रहा है. मजे की बात यह है कि वैधानिक रूप से वनों की कटाई की अनुमति दी जा रही है. निःसंदेह सड़क निर्माण कंपनी को काटे गए पेड़ों से कई गुणा अधिक वृक्ष लगाने का अनुबंध हुआ है, लेकिन जल्द उगने वाले कमज़ोर वृक्ष सौ वर्ष पुराने पेड़ों की जगह कभी नहीं ले सकते. अभी झारखंड में 23,605 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र है. यह कुल क्षेत्रफल का 29.61 प्रतिशत है. अब यह प्रतिशत धीरे–धीरे घटता जा रहा है.

हजारीबाग से रांची के बीच कम से कम चार घाटियां हैं, जिनकी वादियां एनएच 33 से गुजरने वाले हर व्यक्ति को अपनी तरफ आकर्षित करती हैं. इस मार्ग से गुजरने वाले पर्यटक इन घाटियों के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर आनंदित हो उठते हैं. हज़ारीबाग़ से क़रीब 15 किलोमीटर आगे चलने के बाद मांडू घाटी आती है. उसके बाद कुजू के पास कोरिया घाटी आती है, जो देखने में कश्मीर की तरह प्रतीत होती है. सड़क के किनारे लगे वर्षों पुराने पेड़ों की खूबसूरत छटा देखते ही बनती है, लेकिन फोरलेन सड़क निर्माण कार्य के दौरान इन पेड़ों के काटे जाने से यहां वीरानी छा जाएगी. इसकी सुंदरता में दाग लग जाएगा. झारखंड की हसीन वादियां उजड़े चमन का रूप ले लेंगी. हज़ारीबाग़ में सड़क के किनारे पेड़ों को काटने के बाद रामगढ़ ज़िले की बारी आएगी. चरही, मांडू, कोरिया एवं चुटूपालू घाटी में सबसे अधिक पेड़ काटे जाने की आशंका है. इस संदर्भ में वन विभाग के एक उच्चाधिकारी कहते हैं कि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की अनुमति से पेड़ काटे जा रहे हैं, इसलिए मंत्रालय के निर्णय का पालन करना विभाग की ज़िम्मेदारी है. वह भरोसा दिलाते हैं कि फोरलेन सड़क निर्माण में जितने पेड़ काटे जाएंगे, उससे अधिक पेड़ लगाकर उनकी क्षतिपूर्ति की जाएगी. उक्त अधिकारी के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था कि क्या पौधे कुछ महीनों में विशाल पेड़ बन जाएंगे? रामगढ़ ज़िला झारखंड के सर्वाधिक प्रदूषित चार शहरों में प्रमुख है. इस वर्ष रामगढ़ प्रदेश का सबसे गर्म स्थान रहा. यहां का तापमान 48 डिग्री तक रिकॉर्ड किया गया. इस लिहाज से रामगढ़ में जंगलों को न केवल बचाना, बल्कि वृक्षारोपण को भी बढ़ावा देना ज़रूरी है. फोरलेन सड़क बनाने के लिए रामगढ़ ज़िले में कम से कम छह हज़ार पेड़ों की बलि चढ़ा दी जाएगी. हज़ारीबाग़ के डेमोटांड से रांची ज़िले के नेवरी विकास खंड तक 73 किलोमीटर फोरलेन सड़क के लिए 625 करोड़ रुपये की योजना स्वीकार की जा चुकी है. हाल में रांची दौरे पर आए केंद्रीय मंत्री आरपीएन सिंह ने बताया कि रांची–जमशेदपुर तक फोरलेन सड़क बनाने के लिए 1479 करोड़ रुपये का आवंटन किया जा चुका है. इस तरह झारखंड से गुजरने वाले सभी राष्ट्रीय राजमार्गों को फोरलेन में तब्दील करने की योजना पर काम हो रहा है.

हज़ारीबाग़ से रांची के बीच कम से कम चार घाटियां हैं, जिनकी वादियां एनएच 33 से गुज़रने वाले हर व्यक्ति को अपनी तरफ़ आकर्षित करती हैं. इस मार्ग से गुज़रने वाले पर्यटक इन घाटियों के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर आनंदित हो उठते हैं. हज़ारीबाग़ से क़रीब 15 किलोमीटर आगे चलने के बाद मांडू घाटी आती है.

यकीनन फोरलेन बन जाने से तूफानी रफ्तार से गाड़ियां दौड़ेंगी और बिना किसी रुकावट के एक सौ किलोमीटर की दूरी लोग एक से डेढ़ घंटे में तय कर लेंगे. इससे यातायात सुगम और सुखदायी होगा. सरकार काफी पहले से इस अति व्यस्त मार्ग के चौड़ीकरण पर विचार कर रही थी. हालांकि देर–सबेर सड़क निर्माण के लिए पहले चरण में पेड़ों की कटाई तो शुरू हो गई है, लेकिन इससे होने वाले नुक़सान की भरपाई कौन और कैसे करेगा, यह एक यक्ष प्रश्न बन गया है.

नंद किशोर अग्रवाल
feedback@chauthiduniya.com

मशान जलाशय परियोजना अधर में

राज्य की पहली सिंचाई परियोजना यानी मशान जलाशय परियोजना मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की आंखों से ओझल हो गई है, जबकि इसका निर्माण कार्य अंग्रेजी हुकूमत के समय से ही चल रहा है. अगर यह परियोजना पूरी हो जाती तो उत्तर बिहार का कायाकल्प हो जाता. मज़दूरों को रोज़ी–रोटी के लिए अपना परिवार छोड़कर दिल्ली, पंजाब और हरियाणा नहीं जाना पड़ता. बंजर भूमि उपजाऊ हो जाती. लोगों के जीवन स्तर में सुधार आ जाता. उन्हें बाढ़ से मुक्ति मिल जाती, लेकिन यह परियोजना राज्य और केंद्र सरकार के उदासीन रवैये के चलते अब तक पूरी नहीं हो सकी है.

पश्चिम चंपारण के रामनगर में स्थित मशान नदी पर इस जलाशय परियोजना का निर्माण कार्य ब्रिटिश काल से ही चल रहा है, जो अब तक पूरा नहीं हो सका है. त्रासदी यह कि इसमें पानी के सिवाय सब कुछ है. विकास और विश्वास का दावा करने वाले मुख्यमंत्री नीतीश कुमार भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं. यहां के लोगों को रोजी–रोटी देने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने इस परियोजना का निर्णय लिया था, लेकिन अलग–अलग कारणों से इसका निर्माण कार्य टलता रहा. हालांकि कांग्रेस सरकार में केंद्रीय मंत्री रहे केदार पांडेय ने सिंचाई मंत्री बनने पर परियोजना का काम शुरू कराया, मगर उनके निधन के बाद काम में जो ठहराव आया, वह आज तक जारी है. यह परियोजना पूरी होने से उत्तर बिहार में प्रत्येक साल आने वाली भयंकर बाढ़ और सूखे से निपटा जा सकता है. मशान नदी का सारा पानी सिकरहना नदी में गिरता है. सिकरहना को बूढ़ी गंडक नदी के नाम से भी जाना जाता है. यह बरसात के दिनों में पूरे उत्तर बिहार में बाढ़ का एक कारण बनती है. अगर अधूरी पड़ी मशान परियोजना का निर्माण पूरा हो जाए तो बंजर ज़मीनों का कायाकल्प हो जाएगा, साथ ही हर साल यहां से पंजाब और हरियाणा के लिए हो रहा मजदूरों का पलायन भी रोका जा सकता है. सरकार के साथ–साथ विपक्षी दलों का ध्यान भी इस तरफ से हट गया है. जिस कार्य को पूरा करने के लिए अंग्रेजी सरकार कटिबद्ध थी, उसी परियोजना को आज नेताओं की उपेक्षा का दंश झेलना पड़ रहा है.

मशान नदी पर इस परियोजना का ख्याल अंग्रेजी शासन को इसलिए आया था, ताकि इसके ज़रिये क्षेत्र को बाढ़ और सूखे से बचाया जा सके. साथ ही पैदावार भी बढ़ाई जा सके. अंग्रेजी शासन ने स्टोनी नामक कार्यपालक अभियंता को इसकी ज़िम्मेदारी सौंपी थी, जिसने अपने सर्वेक्षण द्वारा यह पाया कि 350 वर्ग किलोमीटर में मशान नदी पर 5220 मीटर लंबे एवं 85 फीट ऊंचे बांध का निर्माण करके बरसात का पानी रोका और दोनों तरफ नहर का निर्माण करके सिंचाई कार्य किया जा सकता है. इससे बाढ़ पर काबू पाया जा सकता है और पैदावार भी बढ़ाई जा सकती है. इस कार्य के लिए लगभग पांच हज़ार की आबादी वाले चार गांवों को कहीं दूसरी जगह बसाना था. परियोजना को गति देने के लिए नौ सौ किलोमीटर लंबी सड़क का निर्माण भी किया जाना था. उक्त पदाधिकारी को सरकार ने 19 अगस्त, 1851 को सर्वेक्षण करने की ज़िम्मेदारी सौंपी थी. 12 दिसंबर, 1853 को उसने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी. सरकार ने निर्माण की दिशा में क़दम आगे बढ़ाया, लेकिन कुछ दिनों तक काम करने के बाद सिंचाई विभाग ने अपनी अकर्मण्यता और निष्क्रियता का परिचय देते हुए सरकार को यह बता दिया कि काम महंगा है और ऊंचा बांध बनाने के लिए मिट्टी उपयुक्त नहीं है. 5 जून, 1876 को सिंचाई विभाग ने इससे अपना पल्ला झाड़ लिया. लेकिन सरकार ने हिम्मत नहीं हारी. उसने 1947 में एक बार फिर सीतारमण नामक अधीक्षण अभियंता से सर्वेक्षण कराया. उन्होंने भी परियोजना को उपयुक्त बताया, लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन के कारण इसका निर्माण कार्य अधर में लटक गया. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार का ध्यान इस परियोजना पर गया. 1970 में सहायक अभियंता ललित मोहन प्रसाद को पुनः सर्वेक्षण करने के लिए कहा गया. सर्वेक्षण में इस परियोजना पर 353 लाख रुपये खर्च होने की बात कही गई. फिर भी निर्माण कार्य शुरू नहीं हो पाया. उसके बाद सरकार ने 1977 में कार्यपालक अभियंता चंद्रमा सिंह से सर्वेक्षण कराया और निर्माण के लिए मास्टरप्लान तैयार कराना शुरू किया, जिसे 20 जनवरी, 1978 को अंतिम रूप दिया गया. 11 जुलाई, 1980 को केंद्रीय जल आयोग के एम एन वेंकटेशन द्वारा योजना स्थल का निरीक्षण किया गया. अंततः 28 नवंबर, 1980 को केंद्रीय जल आयोग एवं योजना आयोग की सलाहकार समिति ने 3473 लाख रुपये देकर योजना को अपनी स्वीकृति प्रदान की. 27 जुलाई, 1981 को बिहार सिंचाई विभाग ने प्रशासनिक और 27 अक्टूबर, 1981 को मुख्य अभियंता जी पी शाही द्वारा योजना को प्रावैधानिक स्वीकृति दी गई. एक फरवरी, 1982 को निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ. कुछ महीनों तक तो निर्माण कार्य ठीकठाक चला, लेकिन उसके बाद पैसों के अभाव में परियोजना अधर में लटक गई. इस दौरान राज्य और केंद्र में सरकारें आती–जाती रहीं, लेकिन इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया. समाजसेवी अखिलेश ठाकुर का कहना है कि मशान जलाशय परियोजना का निर्माण कार्य पूरा हो जाए तो उत्तर बिहार कृषि के मामले में दूसरा पंजाब साबित होगा. यहां की मिट्टी बहुत उपजाऊ है. मशान दियारा क्षेत्र में दस हज़ार एकड़ से ज़्यादा भूमि मरु स्थिति में है. परियोजना से यहां की भूमि को जान मिल जाएगी. समाजसेवी अपर्णा सिंह का मानना है कि परियोजना पूरी हो जाने से उत्तर बिहार से मजदूरों का पलायन रुक जाएगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

गांजे के खेतों में पनप रहा माओवाद

भारत–नेपाल सीमा से सटे हिस्सों में गांजे और अफीम की खेती माओवादियों के संरक्षण में इन दिनों खूब फल–फूल रही है. यहां से दुनिया भर में गांजे और अफीम की तस्करी होती है. इससे जुड़े लोग अकूत धन कमा रहे हैं. गांजे और अफीम की खेती करने वालों से माओवादी लेवी वसूलते हैं. इससे वे हथियार ख़रीद कर अपना दबदबा कायम रखते हैं. नेपाल के नारायण घाट, भिसवा, पोखरिया, बरधाट, गुरमी, हथौड़ा आदि इलाक़ों में अफीम और गांजे की खेती जमकर हो रही है. भारतीय इलाक़ों में सिकटा, मैनाटाड़, भेलाही, रक्सौल, सुगौली, नरकटियागंज, पनियहवा, ठकराहा आदि स्थान तस्करों के लेनदेन के केंद्र बन चुके हैं. इन रास्तों से उनका कारोबार भारत के चुनिंदा शहरों और राजधानी तक हो रहा है. गांजे और अफीम की खेती को माओवादियों का खुला समर्थन और पैसे की वसूली देख लोग हतप्रभ हैं, क्योंकि नेपाल में माओवादी सरकार के गिरने और लोकतंत्रवादी सरकार की स्थापना के बाद उन्होंने फिर से अपना पुराना हिंसात्मक आंदोलन शुरू कर दिया है. उनके मंसूबों को देखकर सीमावर्ती भारतीयों को यह लगने लगा है कि माओवादी अफगानिस्तान की राह अपना कर नेपाल की लोकतंत्रीय सत्ता को फिर से पलटने की तैयारी तो नहीं कर रहें हैं?

नेपाल में माओवादियों की सरकार तो ज़रूर बनी, लेकिन वह अपने मंसूबे में कामयाब नहीं हो सकी. इसलिए उन्होंने उस सरकार को गिरा देना ही मुनासिब समझा. अब वे फिर से सत्ता में आने के लिए अपनी पुरानी रणनीति को अमलीजामा पहनाने की तैयारी कर रहे हैं. इसलिए वे गांजे और अफीम जैसे मादक पदार्थों की खेती करके अपनी आमदनी बढ़ाना चाहते हैं और अपनी ताक़त में भी बढ़ोत्तरी की रणनीति बना रहे हैं.

बताया जाता है कि एक एकड़ खेत में लगी अफीम या गांजे की फसल से डेढ़ हज़ार रुपये माओवादियों, पांच सौ रुपये पुलिस और दो हज़ार रुपये प्रशासन को मिलते हैं. इसके बदले में कारोबारियों को सुरक्षा मिलती है. स्थानीय लोगों का विरोध भी चढ़ावे के सामने कोई काम नहीं करता. माओवादियों और प्रशासन की मिलीभगत से नेपाल स्थित मधवल, भौराटार, वरधाट, मधुबन, हथौड़ा, पचरुखी, पिड़ारी, गुरमी, पोखरिया, सतवरिया, भीसवा एवं ठोरी आदि क्षेत्रों में गांजे और अफीम की खेती हो रही है. भारतीय क्षेत्र से सटे नेपाल के पर्सा ज़िले के वीरगंज में भी इसकी खेती हो रही है. हैरत तो उस समय हुई, जब इस वर्ष फरवरी में वीरगंज से 20 किलोमीटर दूर पश्चिम में पोखरिया चौक के पास गांजे के खेत में माओवादियों की बैठक हुई, जिसमें माओवादी नेता पुष्प कमल दहल प्रचंड भी शामिल थे. यह बैठक जालिम मियां नामक शख्स ने बुलाई थी. इसमें प्रशासन के लोग भी मौजूद थे. सीमावर्ती लोगों में प्रतिक्रिया होने लगी कि नेपाल में गांजे और अफीम की खेती नहीं हो रही है, बल्कि माओवाद के खेत में उग्रवाद उपजाने की तैयारी हो रही है. इस पर नेपाल सरकार को रोक लगानी चाहिए, लेकिन वह मौन है. जिस तरह से गांजे और अफीम की खेती करके हथियारों का कारोबार हो रहा है, उससे तो यही लगता है कि आने वाले समय में नेपाल माओवादियों के कहर से एक बार फिर धू–धूकर जलेगा. इस कारोबार से सीमावर्ती भारतीय क्षेत्र भी प्रभावित हो रहे हैं. तस्करों का नेटवर्क भारत के कई शहरों में फैला है. नेपाल के कारोबारी अपने नेटवर्क के हिसाब से भारतीय सीमा में माल उपलब्ध करा देते हैं. प्रशासन के चौकस रहने पर खेप मोटरसाइकिलों, साइकिलों एवं कुरियर द्वारा गोरखपुर, सुगौली और मुजफ्फरपुर आदि जगहों पर पहुंचा दी जाती है. तस्कर अपना माल पहुंचाने के लिए सप्तक्रांति, सत्याग्रह एवं वैशाली एक्सप्रेस आदि ट्रेनों का उपयोग करते हैं. इनसे वे आसानी से माल को दिल्ली पहुंचा देते हैं. समय–समय पर प्रशासन छापामारी करके माल जब्त भी करता है. 27 दिसंबर 2007 को भारत–नेपाल सीमा स्थित कठिया–मठिया गांव के पास एसएसबी ने पिंटू भगत नामक तस्कर को चरस के साथ गिरफ्तार किया था. वह बैशखवा टोले का रहने वाला था. सूत्रों की मानें तो 2009 के दिसंबर माह तक 9,160 किलो गांजा, 1,075 किलो अफीम एवं 230 किलो चरस की बरामदगी की जा चुकी थी. सूत्रों के मुताबिक़, बीते जून माह में भी सीमावर्ती पुलिस ने छापामारी की. बलथर थाना पुलिस ने 35 किलो चरस, सिकटा थाना पुलिस ने 7 क्विंटल गांजा जब्त किया. 23 जून को ठकराहा पुलिस ने सवा दो क्विंटल गांजा बेलवारी गांव के कुडिया सरेह से जब्त किया, लेकिन तस्कर भागने में सफल रहे. लोजपा के ज़िलाध्यक्ष वीरेश्वर राय कहते हैं कि माओवादियों द्वारा अफीम और गांजे की खेती के लिए प्रोत्साहन देना, फिर पैसा ऐंठकर हथियार खरीदना निंदनीय है.

नेपाल में माओवादियों की सरकार तो ज़रूर बनी, लेकिन वह अपने मंसूबे में कामयाब नहीं हो सकी. इसलिए उन्होंने उस सरकार को गिरा देना ही मुनासिब समझा. अब वे फिर से सत्ता में आने के लिए अपनी पुरानी रणनीति को अमलीजामा पहनाने की तैयारी कर रहे हैं.

प्रो. अरविन्द नाथ तिवारी
feedback@chauthiduniya.com

भूमिहार समाज दलबदलू नेताओं से परेशान

दिव्या कुमारी

कहावत है कि मेढकों को तराजू में नहीं तौला जा सकता. राजनीति में भी यह कहावत लागू होती है. और बात जब भूमिहार नेताओं की आती है तो यह अक्षरशः साबित होती है. नेताओं में मेढकों की तरह उछल–कूद की प्रवृत्ति से भूमिहार समाज हैरान–परेशान है. ऐसा करने वाले नामों की फेहरिस्त लंबी है. इनमें पूर्व सांसद अरुण कुमार, विधान पार्षद नीरज कुमार, पूर्व मंत्री वीणा शाही, श्यामसुंदर सिंह धीरज, रामजतन सिन्हा, जहानाबाद के सांसद जगदीश शर्मा, लालगंज के विधायक मुन्ना शुक्ला एवं पूर्व सांसद सूरजभान आदि प्रमुख रूप से शामिल हैं. ताजा मामला जहानाबाद के पूर्व सांसद अरुण कुमार का है. वह भी नीतीश कुमार का नेतृत्व कबूल करने के लिए तैयार हो गए हैं, जबकि जदयू द्वारा राज्यसभा में भेजे गए उपेंद्र कुशवाहा ने सवर्णों को काफी भला–बुरा कहा था. पटना में आयोजित जगदेव प्रसाद जयंती समारोह में उपेंद्र कुशवाहा ने सरेआम कहा था कि पिछड़े गालियां बर्दाश्त नहीं करेंगे. यदि कोई पिछड़ों को गाली देगा तो उनके हाथ गाली देने वालों की गर्दनों तक पहुंच जाएंगे. अपने राजनीतिक वनवास के समापन को बेचैन अरुण कुमार समाज के अपमान को भूल गए. उपेंद्र कुशवाहा का बयान ललन सिंह को केंद्र में रखकर आया था. नीतीश कुमार से ललन के अलगाव का कारण भी उपेंद्र कुशवाहा थे. कांग्रेस में मान–सम्मान मिलने के बावजूद अरुण कुमार दोबारा नीतीश के सिपहसालार बनने को तैयार हो गए, जबकि उनके ख़िलाफ़ बाढ़ की अदालत द्वारा सम्मन जारी करने के मामले में शासन ने बतौर साजिशकर्ता अरुण कुमार को लक्षित किया था. पंडारक के ढीबर निवासी रामानंद सिंह के कथित अपहरण के मामले में अरुण कुमार के घर पुलिस का छापा पड़ा था. कांग्रेस कार्यकर्ता की हत्या के मामले के गवाह रामानंद सिंह की बरामदगी भी पुलिस ने अरुण कुमार के आवास से दिखाई थी. 1990 में गया स्नातक क्षेत्र से विधान पार्षद चुने गए अरुण बाद में नीतीश की शरण में गए थे. युवा समता पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष रह चुके अरुण बाद में नीतीश से अलग होकर लालू–रामविलास का समर्थन पाकर नालंदा से बतौर निर्दलीय उम्मीदवार ताल ठोंकने लगे थे. लोजपा में शामिल होकर राष्ट्रीय महासचिव नियुक्त हुए अरुण 2009 के लोकसभा चुनाव के दौरान कांग्रेस की शरण में चले गए, क्योंकि राजद प्रमुख लालू प्रसाद ने अरुण कुमार के लिए जहानाबाद सीट छोड़ने से मना कर दिया था. कांग्रेस के टिकट पर लोकसभा का चुनाव लड़ने वाले अरुण अब फिर से समाज को ठगा हुआ महसूस कराकर जद (यू) में लौट चुके हैं. उन्होंने कभी कहा था कि भूमिहार समाज राजनीति में कहार की भूमिका में है और यह बिरादरी पालकी ढोने का काम करती है. नीतीश, लालू, रामविलास और कांग्रेस की पालकी ढोकर उन्होंने अपने बयान को सही ठहराया.

मोकामा के एमएलसी नीरज कुमार का राजनीतिक जीवन भी हनुमान कूद का रहा है. भाकपा के बैनर तले राजनीतिक जीवन की शुरुआत करने वाले नीरज कांग्रेस, भाजपा, समता पार्टी के रास्ते जद (यू) की राजनीति में सक्रिय हैं. अरुण कुमार जब समता पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष थे, तब नीरज उनकी समिति में प्रधान महासचिव थे. अरुण ने जब नीतीश का साथ छोड़ा तो नीरज वर्तमान मुंगेर सांसद राजीव रंजन सिंह उर्फ ललन सिंह के साथ हो लिए. पटना स्नातक विधान परिषद चुनाव में नीरज के अलावा वेंकटेश उर्फ डब्लू एवं रमेश सिंह प्रमुख दावेदार थे. डब्लू को शिवप्रसन्न यादव की मार्फत शरद यादव का वरदहस्त प्राप्त था और पूर्व एमएलसी अधिवक्ता रमेश प्रसाद सिंह मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की पसंद थे. लेकिन ललन सिंह ने ताक़त लगाकर न सिर्फ़ नीरज को उम्मीदवारी दिलाई, बल्कि उनकी जीत भी सुनिश्चित कराई. जब नीतीश कुमार से ललन सिंह की दूरी बढ़ी और ललन ने किसान महापंचायत का झंडा बुलंद किया, तब नीरज किसान रथ लेकर बिहार की सड़कों पर दौड़ने लगे. नीरज के कारनामे को अवसरवादिता की पराकाष्ठा माना गया. जहानाबाद के सांसद जगदीश शर्मा की पलटमारी ने तो सबको हतप्रभ कर दिया. विधानसभा उपचुनावों में पार्टी लाइन के विपरीत जाकर जगदीश शर्मा ने अपनी पत्नी शांति शर्मा को घोसी से उतारा तो सरकार के निर्देश पर एसटीएफ को उतार दिया गया था. जगदीश शर्मा के समर्थकों की मतदान के दिन चुन–चुनकर पिटाई की गई. जद (यू) से निलंबित होने के बाद किसान महापंचायत के शुरुआती दिनों में समर्थन करने वाले जगदीश शर्मा ने न सिर्फ़ ख़ुद को महापंचायत से अलग कर लिया, बल्कि नीतीश कुमार के इशारे पर अब स्वामी सहजानंद किसान महाचौपाल के आयोजन में भी जुटे हैं. पूर्व मंत्री वीणा शाही ने वर्ष 2000 के विधानसभा चुनावों के बाद नीतीश की सात दिनी सत्ता के दौरान कहा था कि यदि उनके एक वोट से नीतीश की सरकार बचती है तो वह सरकार बचाएंगी. नीतीश को वोट देने की बात तो दूर, वीणा शाही राबड़ी देवी मंत्रिमंडल में भी बतौर सहकारिता मंत्री शामिल हुईं. वीणा स्व. हेमंत शाही की पत्नी हैं, जिनकी हत्या लालू राज में हुई थी. पूर्व मंत्री श्यामसुंदर सिंह धीरज फिलहाल कांग्रेस में हैं. कांग्रेस के बैनर तले राजनीतिक क्षितिज पर चमकने वाले धीरज बाद में समता पार्टी में गए. नीतीश के साथ साए की तरह चिपक कर रहने वाले धीरज बाद में लालू की शरण में भी गए और फिर थक–हारकर कांग्रेस में वापस आ गए हैं. रामजतन सिन्हा भी दलबदल के लिए चर्चित रहे हैं. कांग्रेस में हमेशा गुटबाजों की अग्रिम पंक्ति में शामिल रहे रामजतन सिन्हा लोजपा के पदाधिकारी बने और फिर बाद में उन्होंने अपना संगठन भी बनाया. वह फिलहाल कांग्रेस में हैं. लालगंज के विधायक मुन्ना शुक्ला दस वर्षों के राजनीतिक इतिहास में कई बार दल बदल चुके हैं. निर्दलीय चुनाव जीतने वाले मुन्ना बाद में लोजपा में शामिल हुए और फिर जद (यू) में आ गए. फिलहाल वह जी कृष्णैया हत्याकांड में सजायाफ्ता होकर जेल में बंद हैं. मुन्ना राजद की ओर हमेशा टकटकी लगाए रहते थे. पूर्व सांसद सूरजभान सिंह की स्थिति फिलहाल बेहतर है. समता पार्टी के समर्थन से 2000 में मोकामा से विधायक बने सूरजभान ने तब निर्दलीय विधायक मोर्चा बनाया और नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री बनाने में सारी ताक़त लगाकर उनके एहसान का बदला चुकाया. लोजपा प्रत्याशी के तौर पर 2004 में बलिया से सांसद बने सूरजभान ने रामविलास का नेतृत्व कबूल किया और अभी तक उनके साथ बने हुए हैं. सूरजभान ने उस वक्त भी रामविलास का साथ नहीं छोड़ा, जब लोजपा में भगदड़ मच गई थी. बात यदि महाचंद्र प्रसाद की करें तो कांग्रेस के खूंटे से बंध कर रहने के बावजूद समाज के लोगों का कभी उन पर विश्वास नहीं रहा. श्याम सुंदर सिंह धीरज बताते हैं कि समाज में कुछ नेता ऐसे भी हुए हैं, जो मंडल कमीशन का अनावश्यक विरोध कर लालू प्रसाद की राजनीति मजबूत करते रहे. जेपी आंदोलन में सक्रिय रहे पत्रकार वीरेंद्र कुमार बताते हैं कि मंडल आयोग का कतिपय लोगों ने ज़रूरत से ज़्यादा विरोध किया और यही कारण है कि अगड़ा–पिछड़ावाद को बढ़ावा मिला और सवर्ण समुदाय राजनीति में हाशिए पर चला गया. विधानसभा चुनाव की आहट के साथ ही राजनीतिक पलटमारी को बढ़ावा मिलने की उम्मीद है. भूमिहारों के बड़े तबके का मानना है कि नीतीश कुमार की राजनीति जब पिछड़ा–अति पिछड़ा–महादलित–मुस्लिम समीकरण के सहारे आगे बढ़ेगी तो फिर बिरादरी के नेता क्यों नीतीश का साथ कबूल करने को बेताब हैं. नीतीश से नाराज भूमिहारों का एक बड़ा तबका राजीव रंजन सिंह उर्फ ललन सिंह की ओर टकटकी लगाए बैठा है, जो सार्वजनिक सभाओं में ख़ुद को सफल सर्जन बताते हुए नीतीश के पेट में छिपे दांत बाहर निकालने की बात कह रहे हैं. देखना दिलचस्प होगा कि ललन सिंह क्या गुल खिलाते हैं.

feedback@chauthiduniya.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 19 जुलाई–25 जुलाई 2010

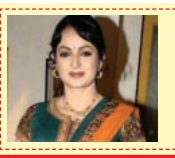

उपासना सिंह के मुताबिक़ भोजपुरी फ़िल्मों में उन्हें चटपटे रोल मिलते हैं, जिन्हें वह अपने अभिनय के तड़के से और चटपटा और रंगीन बना देती हैं.

श्रावणी मेला

बहुत कठिन है जलार्पण की डगर

लगातार एक माह तक चलने वाला विश्व प्रसिद्ध श्रावणी मेला 26 जुलाई से शुरू हो रहा है. इस अवसर पर बाबा वैद्यनाथ धाम में शिवभक्तों का हुजूम उमड़ पड़ता है. पूरा मंदिर परिसर जयकारों से गूंजता रहता है. लाखों की संख्या में कांवरिए सुल्तानगंज से गंगाजल भरकर 110 किलोमीटर पैदल चलने के बाद तीन-चार दिनों में यहां पहुंचते हैं और बाबा वैद्यनाथ को गंगाजल अर्पित करते हैं. इस बार भी कांवरियों को पांच-छह किलोमीटर लंबी कतार में खड़े रहकर 8 से 10 घंटे के इंतजार के बाद ही जलार्पण का अवसर मिलेगा. वजह, सीमित क्षमता वाले गर्भगृह में प्रतिदिन औसतन 25- 26 हज़ार श्रद्धालु ही पूजा-अर्चना कर सकते हैं. जबकि मेले के दौरान प्रतिदिन 50-60 हज़ार कांवरिए वैद्यनाथ धाम आते हैं. गर्भगृह में प्रवेश और निकास के लिए एक ही रास्ता है. इस वजह से श्रद्धालुओं को पूजा-अर्चना करने और निकले में काफ़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है.

मेले के दौरान होने वाली भीड़ के मद्देनज़र पिछले कई वर्षों से जलार्पण के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की मांग उठ रही है, लेकिन 2002 में गठित बाबा वैद्यनाथ मंदिर प्रबंधन बोर्ड की ओर से अभी तक कोई सार्थक निर्णय नहीं लिया जा सका है. भीड़ के कारण हर वर्ष दम घुटने से कई मौतें हो रही हैं. लंबी दूरी पैदल तयकर आने के बाद श्रद्धालुओं को इंतजार करना पड़ता है. मंदिर प्रबंधन बोर्ड का गठन श्रद्धालुओं को सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया था, लेकिन नियमित पूजा कार्यक्रम के अलावा बोर्ड आज तक कोई उल्लेखनीय काम नहीं कर पाया. देश के अन्य तीर्थस्थलों की तरह यहां भी प्रसाद वितरण का निर्णय लिया गया था. कुछ दिनों तक ऐसा हुआ भी, लेकिन बाद में बंद हो गया.

आस्था की प्रतीक पवित्र शिवगंगा नदी की सफ़ाई की दिशा में भी कोई सार्थक प्रयास नहीं हो पाया है. बावजूद इसके कि शिवगंगा की सफ़ाई के नाम पर अब तक करोड़ों रुपये ख़र्च हो चुके हैं. शिवगंगा का पानी पीने योग्य तो दूर, नहाने योग्य भी नहीं रह गया है. जानकार बताते हैं कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान शिवगंगा की सफ़ाई के नाम पर सरकारी धन की जमकर लूट की गई. इस वर्ष यदि भगवान इंद्र श्रद्धालुओं पर मेहरबान नहीं हुए तो पेयजल के लिए भी हाहाकार मच सकता है, क्योंकि शहर का जलस्तर काफ़ी नीचे चला गया है. लोग पेयजल संकट से जूझ रहे हैं. धुआंधार बिजली कटौती के चलते पेयजल आपूर्ति में बाधा आ रही है. यही नहीं, मंदिर परिसर में चोरी और पाकेटमारी की घटनाएं भी लगातार बढ़ती जा रही हैं. मज़ेदार बात तो यह है कि पुलिस थाना मंदिर से सटा हुआ है.

लगभग दस वर्ष पूर्व शहर में दर्जनों धर्मशालाएं थीं, जहां श्रद्धालु रात्रि विश्राम करते थे, लेकिन आज कई धर्मशालाएं खंडहर में तब्दील हो गई हैं और कई अतिक्रमण का शिकार. इस वजह से ज़्यादातर श्रद्धालुओं को रात गुज़ारने की जगह आसानी से नहीं मिल पाती. कई धर्मशालाएं प्रबंधकों की अवैध कमाई का ज़रिया बन गई हैं. ज़िला प्रशासन भी इस ओर कभी कोई सार्थक क़दम नहीं उठाता. वजह, बहुधा शिकायतकर्ता बाहरी लोग होते हैं, वे गवाही के लिए ज़्यादा दिनों तक ठहर नहीं सकते. धर्मशालाओं की हालत पर ट्रस्टी भी कोई ध्यान नहीं देते.

सरकारी धर्मशालाओं की हालत और भी ख़राब है. उन पर ज़िला प्रशासन ध्यान ही नहीं देता. श्रावणी मेले से पहले बैठकों में स्थिति सुधारने की बात तो होती है, लेकिन सब कुछ पहले की तरह ही रहता है. जबकि ज़िला प्रशासन को मेले में सुविधाएं जुटाने के लिए शासन की ओर से हर वर्ष लाखों रुपये मिलते हैं. कांवरिया पथ की हालत काफी खस्ता है. सुल्तानगंज से दुम्मा तक (बिहार सीमा) 30 पुल-पुलियों का निर्माण अभी भी बाक़ी है. पिछले साल श्रावणी मेले पर राज्य सरकार ने हर हाल में कांवरिया पथ चालू कर देने की बात कही थी, पर लगता नहीं कि समय रहते यह वादा पूरा हो पाएगा.

रणजीत झा
feedback@chauthiduniya.com

सूख रहा धान का कटोरा

एक कहावत है, उचित समय और मौसम देखकर बंजर भूमि भी सोना उगलने लगती है. इसके विपरीत सदियों से सोना उगलने वाली शाहाबाद की धरती इस बार नाकाम साबित हो रही है. इंद्रदेव के कोप से यहां की भूमि बंजर होने के क़रीब है. रोहतास ज़िले की दो लाख हेक्टेयर ज़मीन पर अभी तक धान की फ़सल बोई नहीं जा सकी है. वजह, हर बार जून माह में शाहाबाद से गुज़रने वाली सोन केनाल से हज़ारों क्यूसेक पानी खेतों में बहा दिया जाता था, लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ. यहां जून में इतनी वर्षा भी नहीं हुई कि परिंदों का हलक तर हो सके, खेतों की प्यास बुझाने की बात कौन करे. महाकवि घाघ के अनुसार, रोहिणी-दसतड़िका नक्षत्र में गिराए गए धान के बीज खेती के लिए सबसे अच्छे होते हैं. आद्रा नक्षत्र में गिराए गए धान के बीज खेती के लिए सामान्य होते हैं. लेकिन यहां रोहिणी एवं दसतड़िका नक्षत्रों की बात कौन करे, आद्रा में भी धान के बीज नहीं गिराए जा सके. ऐसे में ख़रीफ की खेती कैसे होगी और धान के कटोरे की आबरू कैसे बचेगी? यह एक यक्ष प्रश्न बन गया है. किसानों के चेहरे पर खिंची चिंता की लकीरों ने स्पष्ट कर दिया है कि आने वाले दिन बेहतर नहीं है, क्योंकि खेतों में हरियाली की जगह दरारें नज़र आ रही हैं. प्रति हेक्टेयर 58 से लेकर 60 क्विंटल तक धान पैदा करने वाले इस क्षेत्र के किसान अब यह सोचने को विवश हैं कि इस वर्ष दाना-पानी कैसे चलेगा. विश्वास यात्रा के दौरान यहां पहुंचे मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के सामने भी यह समस्या रखी गई, लेकिन उन्होंने इसे प्रकृति की मार बताकर टाल दिया.

ममता चौहान
feedback@chauthiduniya.com

भोजपुरी दिल के करीब है उपासना सिंह

माई तो बस माई बाड़ी, माई के पुकार एवं बंधन टूटे ना आदि कुछ ऐसी फ़िल्में हैं, जिनमें भोजपुरी फ़िल्म इंडस्ट्री के बड़े-बड़े कलाकारों ने काम किया. यह सभी फ़िल्में हिट भी रहीं. इन फ़िल्मों को हिट कराने का जितना श्रेय लीड एक्टर्स को जाता है, उतना ही चुलबुली एवं नटखट उपासना सिंह को भी. भोजपुरी फ़िल्म इंडस्ट्री में उपासना सिंह एक ऐसी अदाकारा हैं, जो मुख्य भूमिका में भले ही न दिखाई दें, लेकिन अपने छोटे से रोल से ही फ़िल्म में वह अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में माहिर हैं. चाहे वह भूमिका चुलबुली एवं कॉमेडी करती लड़की की हो, बूढ़ी सास की हो या फिर खलनायिका की. हर किरदार में वह कुछ इस तरह फिट हो जाती हैं कि अच्छी-अच्छी अभिनेत्रियों का रंग फीका पड़ जाता है. पंजाबी फ़िल्मों से अभिनय के मैदान में उतरी उपासना ने हिंदी फ़िल्मों में कई कॉमिक किरदार निभाने के बाद छोटे पर्दे पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई. टीवी धारावाहिकों में राजा की आएगी बारात और परी हूं मैं के लिए उन्हें कई अवार्ड भी मिल चुके हैं. भोजपुरी फ़िल्म बंधन टूटे ना के लिए वह पहले ही बेस्ट निगेटिव अभिनेत्री का पुरस्कार जीत चुकी हैं. उपासना का कहना है कि उन्होंने अब तक जिन क्षेत्रीय भाषाओं की फ़िल्मों में काम किया है, उनमें भोजपुरी उनके दिल के सबसे क़रीब है. हालांकि उन्हें पहचान हिंदी और पंजाबी फ़िल्मों से मिली है, लेकिन काम करने का मज़ा भोजपुरी फ़िल्मों में ही आता है. यहां की फ़िल्मों में उपासना को उनके मुताबिक़ रोल मिलते हैं, जिन्हें वह अपने अभिनय से चटपटा और रंगीन बना देती हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com